||૨૧૭||

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

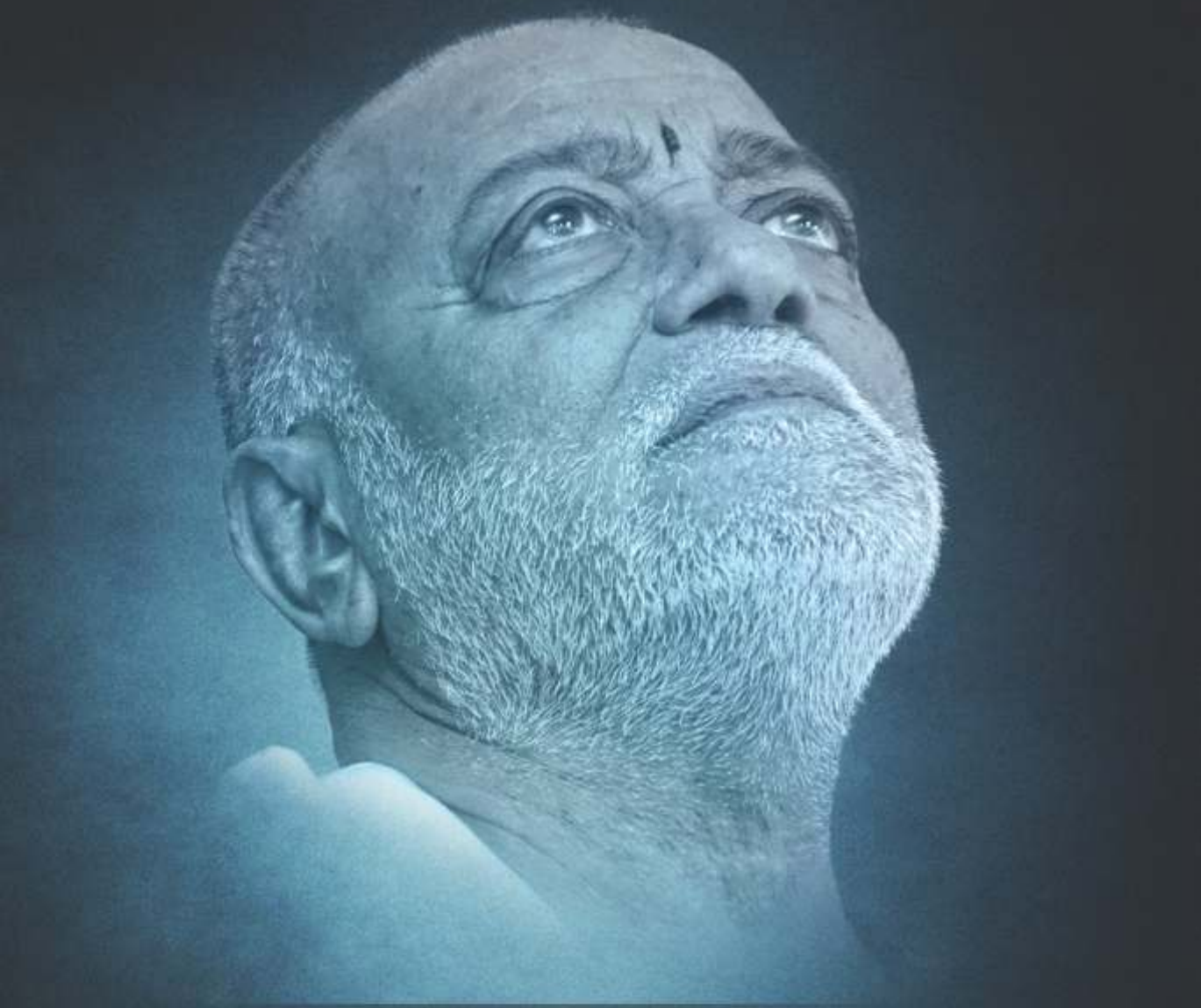

मानस–महेश ग्वालियर (मध्यप्रदेश)

रचि महेस निज मानस राखा। पाई सुसमउ सिवा सन भाषा।।
रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी।।

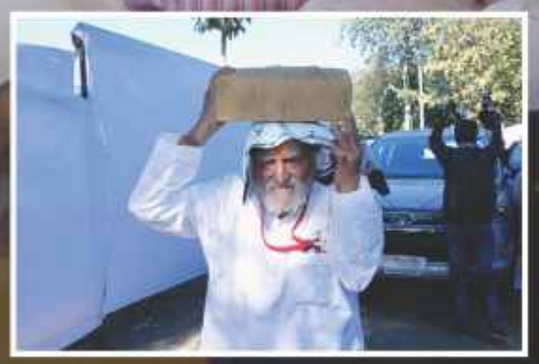

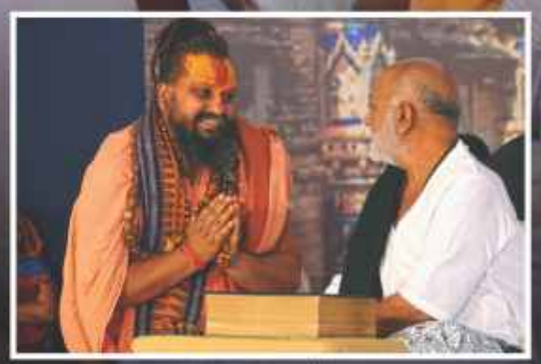

|| **रामकथा** ||
मानस–महेश

मोरारिबापू
ग्वालियर (मध्यप्रदेश)
दिनांक : १८-०२-२०१७ से २६-०२-२०१७
कथा-क्रमांक : ८०७

प्रकाशन :
अप्रैल, २०१९

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

रामकथा पुस्तक प्राप्ति सम्पर्क–सूत्र :
ramkathabook@gmail.com
+91 704 534 2969 (only sms)

ग्राफिक्स
स्वर एनिम्स

प्रेम–पियाला

भारतवर्ष की प्रसिद्ध और ऐतिहासिक नगरी ग्वालियर (मध्यप्रदेश) में दिनांक १८–२–२०१७ से २६–२–२०१७ दरमियान मोरारिबापू ने रामकथा का गान किया। महाशिवरात्रि के पावन पर्व के उपलक्ष्य में बापू ने भगवान शिव की वाङ्मय पूजा करने हेतु इस कथा को 'मानस–महेश' विषय पर केन्द्रित की।

शिव, शंकर, महादेव, हर इत्यादि शिव के सौ नाम है लेकिन 'मानस' के रचनाकार के रूप में तुलसी ने 'महेश' नाम का प्रयोग किया है। और बापू का कहना हुआ कि 'सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान।' ऐसी रामकथा का निरंतर गान करनेवाली सात विभूतियों में महत्त्व के स्थान पर महेश है।

'महेश' शब्द का विवरण बापू ने इस तरह किया कि 'म' का अर्थ होता है ममता। 'हे' का अर्थ है हेमता यानी स्वर्णिमता। और 'श' का अर्थ है शीतलता। अर्थात् 'महेश' का अर्थ है, एक ऐसी जंगमुक्त स्वर्णिम ममता, जो साधक को कायम शीतलता प्रदान करे। बापू ने भगवान महेश यानी शिव की रुद्रमूर्ति, भैरवमूर्ति, मंगलमूर्ति, वाङ्मयमूर्ति, बोधमूर्ति, गुरुमूर्ति, दक्षिणामूर्ति और शांतमूर्ति जैसी अष्टमूर्तियों का परिचय भी दिया।

बापू ने शिवतत्त्व को महत्तम तत्त्व का दर्जा भी दिया कि महत्तम से महत्तम तत्त्व कोई हो तो शिव है। मैं रामकथा का गायक हूं, राम की रोटी खा रहा हूं, अवश्य। राम मेरे लिए सबकुछ है। फिर भी मैं कहूंगा कि शिव ने राम की कथा गाई लेकिन शिव की प्रतिष्ठा तो राम को ही करनी पड़ी। जहां सेतुबंध निर्मित किया गया वहां भगवान को ये पुण्य मनोरथ प्रगट हुआ कि ये उत्तम धरणी है। स्थापना तो राम ही करते हैं। इसका मतलब ये है कि शिव महत्तम तत्त्व है।

'शिव आधिदैहिक भी है, आधिदैविक भी है और आध्यात्मिक भी है।' ऐसे सूत्रपात के साथ बापू ने शिव से संलग्न कैलास, विश्वनाथ, सोमनाथ; गायन, वादन, नर्तन; सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण; स्वर्गलोक, मृत्युलोक, पाताललोक; कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि जैसी तीन–तीन वस्तुओं को भी उद्घाटित की।

बापू ने शिवरात्रि का कल्याणकारी रात्रि के रूप में महिमागान किया। साथ ही शिव–पूजा या शिव–अभिषेक की अर्थछाया को ऐसे विस्तृत की कि महाशिवरात्रि का मतलब ये नहीं कि आप शिवपूजा ही करो। कोई भी कल्याणकारी काम करो ये शिवपूजा है। कोई भी कल्याणकारी काम ये शिव–अभिषेक है। भूखे को आदर के साथ रोटी देना शिव–अभिषेक है। निर्वस्त्र को वस्त्र देना शिव–अभिषेक है।

शिवरात्रि के पावन पर्व पर यूं तो बापू जूनागढ़–गिरनार में रहना पसंद करते हैं लेकिन इस वर्ष बापू ने गिरनार के बजाय ग्वालियर में शिवरात्रि मनाई और 'मानस–महेश' रामकथा के माध्यम से नौ दिन शिव–अभिषेक किया।

– नीतिन वडगामा

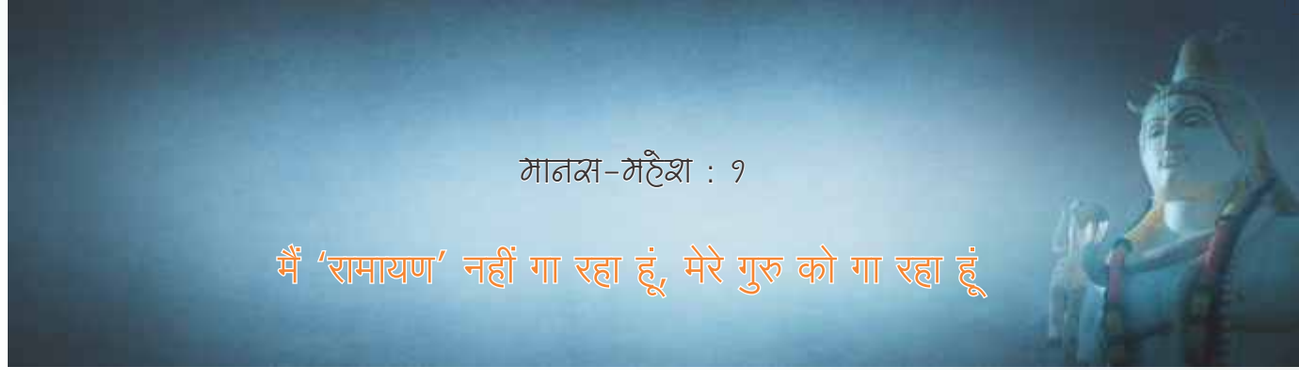

मानस–महेश : १

मैं 'रामायण' नहीं गा रहा हूं, मेरे गुरु को गा रहा हूं

रचि महेस निज मानस राखा। पाई सुसमउ सिवा सन भाषा।।
रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी।।

बाप! भगवत्कृपा से तेइस साल के बाद इस नगरी में 'रामकथा' गाने का फिर अवसर आया है। मैं मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। तेइस साल पहले ग्वालियर की कई विधाओं में प्रसिद्ध और ऐतिहासिक नगरी में कथा गाने का अवसर मिला था स्वर्गीय आदरणीय राजमाता विजयाराजे सिंधिया के मंगल मनोरथ पर। और तेइस साल के बाद तेइस साल से एक फ़क़ीर की तरह मेरी रामकथा के पीछे घूमनेवाला, जिसको ग्वालियर में फिर रामकथा हो उसका पागलपन लगा था ऐसे एक बूढ़े हमारे दीनानाथजी; बूढ़ा तो मैं कह रहा हूं उम्र के कारण बाकी तो कभी मानसरोवर, कभी राक्षसताल, कभी भुशुंडि सरोवर, कभी कहां-कहां, कोई जगह नहीं छोड़ी मेरा पीछा करने में! और आखिर में तो बोलने लगे कि क्या आपका इरादा ये है कि मैं चला जाऊं, उसके बाद कथा कहनी है?

आप करीब-करीब सब जानते हैं, मैं जूनागढ़ में गिरनार में ही रहना ज्यादा पसंद करता हूं महाशिवरात्रि के दिनों में। कोई वैसे परम्परा-सी नहीं। मैं कोई परम्परा खड़ी करना चाहता भी नहीं। मैं कभी न कभी झटका दे सकता हूं। मेरे पर भरोसा मत करना। जूनागढ़ मेरा प्रिय, गिरनार मेरा बहुत अज़ीज़ स्थान है लेकिन इस बार खबर नहीं कि मन में कुछ बैठ नहीं पा रहा था! देखो, योग कैसा होता है? गिरनार के बदले ग्वालियर में शिवरात्रि है!

तो यहां फिर तेइस साल के बाद भगवत्कथा गाने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। ये हमारे बूढ़े दादाजी जो घूमते रहे और उसके साथ आप सब जुड़े; पूरा ग्वालियर, हर क्षेत्र के लोग, हर एक लोग जुड़ गए हैं। मैं निर्णय नहीं कर पाया था क्योंकि इन दिनों में किसी को कथा मुझे देनी नहीं थी। ये आरक्षित दिन थे मेरे। लेकिन मन में नहीं बैठ रहा था। एक महीने पहले गत अठारह जनवरी को मैंने कहलवाया कि एक महीने में कथा का आयोजन कर लोगे? बोले, हुकुम करे! और मैंने कहा, आप अठारह फ़रवरी तक, बीच में शिवरात्रि आ जाएगी, कथा का आयोजन करें। क्योंकि बड़ा आयोजन करना होता है। एक महीना बहुत शोर्ट नोटिस मानी जाएगी। लेकिन इससे भी कम अवधि में हमने कथाएं का आदेश दिया और कर ली! इंदौर में केवल पंद्रह दिन में शायद कथा का आयोजन हो चुका था! तो कथा आप थोड़े करते हैं? कोई करवा लेता है! आप तो निमित्त बन जाते हैं; कोई ना कोई प्रवाह का आधार बन जाते हैं। तो मुझे ख़ुशी है। आज हमारे आदरणीय दीनानाथजी को, हमारे राज्य और राष्ट्र के विध-विध क्षेत्र के विशेष महानुभाव यहां विराजे हैं इन सभी को और आप सभी मेरे भाई-बहन, सभी को मैं व्यासपीठ से प्रणाम करता हूं।

ये ग्वालियर; आठवीं सदी में सूरजसेन कोई राजा हुआ। उसको कोई बहुत बड़ी बीमारी लग गई थी। कोई इलाज नहीं था। तब जाकर कहते हैं, गालव ऋषि उसको मिले और गालव ऋषि ने इलाज किया इस सम्राट का और इससे वो स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर गए। ओर कई कारण हैं इस नगरी के मूल में लेकिन एक बहुत बड़ा सटीक और सबल कारण है कि गालव ऋषि के कारण यहां का सम्राट स्वस्थ हुआ था और इसी के स्मरण में इस नगरी का नाम फिर रख दिया गया ग्वालियर। और गावल ऋषि मेरे 'मानस' का एक पात्र है।

गुर श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस।
हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस।।

तो ये बड़ी प्रसिद्ध और ऐतिहासिक नगरी है। 'महाभारत' में भी जिक्र मिलते हैं कि भीमसेन ने यहां इस भूमि में कई विजय किये थे। इसलिए इस भूमि की भी प्रतिष्ठा है। और कला के क्षेत्र में तो संगीत सम्राट तानसेन की ये जन्मभूमि है।

और विशेष ओर भी ख़ुशी की बात है कि बैजू बावरे की ये कर्मभूमि है। और कई दिग्गज सुर और राग, ताल के सब ग्वालियर में तो हुए। आप तो ज्यादा जानें। आपके सामने क्या बोलूं? लेकिन जो मैंने जाना सो कहूं, बाकी आप तो सब जानकार हैं। लेकिन कहते हैं कि ग्वालियर का बच्चा रोता है तो भी सुर में रोता है और ग्वालियर की कोई पहाड़ी से एक पत्थर गिरते हैं तो ताल में गिरते हैं। ये कहावत मानी गई। ऐसी तालबद्ध और सुरबद्ध ये नगरी है। और संगीत में रुचि है वो तो सब जानते हैं कि कितना बड़ा ग्वालियर घराना! और वर्तमान जगत के हमारे मरहूम निदा फाज़ली साहब की भी ये जन्मभूमि है। कई विध-विध क्षेत्र के लोगों की ये भूमि और ये राजाओं की परंपरा। जैसे मैने राजमाता को याद किया। कितने-कितने संगीतज्ञों ने यहां संगीत की साधना की है!

मैं कोई निर्णय नहीं कर पा रहा था कि इस बार की ग्वालियर कथा में मैं कौन विषय पर आपके साथ बातें करूं, संवाद करूं। लेकिन शिवरात्रि के दिन है। इन दिनों में शिवरात्रि आ रही है इसलिए मैंने सोचा, भगवान शिव की पूजा करें, वाङ्मय पूजा। शिव का दर्शन फिर एक बार बिलग ढंग से हम करें। इस बार ग्वालियर में 'मानस-महेश' की कथा गाई जाये। क्योंकि गंधर्वराज कहता है, महेश के समान कोई दूसरा देव नहीं है। और ये पूरे दिन शिव की बंदगी, शिव की साधना के बहुत प्यारे दिन है। तो करीब तीन बजे ये मेरा निर्णय हुआ। पहले सोचता था कि रागों की नगरी है तो कोई राग पर बोलूं लेकिन फिर मगज में नहीं बैठा तो सोचा कि 'मानस-महेश' पर बोलूं। तो 'मानस-महेश' में हम फिर एक बार महादेव का नौ दिन अभिषेक करेंगे, शिवअभिषेक करेंगे। मैं शब्दों से अभिषेक करूंगा और आप अपने श्रवणों से सुनकर अभिषेक करेंगे। एक शे'र सुनिए, बड़ा प्यारा शे'र है। आपको अच्छा लगे तो आनंद करना-

पहले सौ बार इधर और उधर देखा है।
फिर कहीं जाके तुम्हें एक नज़र देखा है।

और ये एक नजर देखने का तरीका है 'मानस-महेश।' पहले बहुत सोचा जाता था लेकिन सोच लिया बहुत। बहुत उद्यम कर लिया यार! अब क्या सोचें? तो बाप! 'मानस-महेश' को आइये, हम सब ग्वालियर में बैठकर एक नजर देखने की कोशिश करें। बहुत देवों को इधर-उधर देख लिया! बहुत देवताओं की बातें कर ली। करनी चाहिए। जहां जिसकी श्रद्धा और निष्ठा हो। कौन गलत बात है? लेकिन अब नौ दिन के लिए मेरे साथ तलगाजरडी आंखों से महेश को देखिये। महेश कौन तत्त्व है? महेश से उपर कोई महादेव नहीं है। इसलिए इस महाशिवरात्रि ये सब मेरे लिए महाशिवरात्रि के दिन हैं साहब! बहुत आनंद के दिन हैं। बहुत शिवभ्रमण करना इन दिनों में सहज हो तो। ऐसी कथा स्वयं अभिषेक है और त्रिभुवन गुरु है महेश। और मैं आज सुबह ही एयरपोर्ट जाते-जाते भी बोल रहा था कि मैं 'रामायण' नहीं गा रहा हूं, मैं मेरे गुरु को गा रहा हूं। 'रामायण' के बहाने मेरे गुरु को गा रहा हूं। और तत्त्वतः 'रामायण' भी तो गुरु है।

सद्गुरु ग्यान बिराग जोग के।
बिबुध बैद भव भीम रोग के।।

तो त्रिभुवन गुरु है महादेव। परम सद्गुरु है महादेव। और उन्हीं के ये दिनों में ग्वालियर में कथा होने जा रही है उसकी मुझे विशेष प्रसन्नता है। तो आइये, 'मानस' की जिन पंक्तियों का मेरी व्यासपीठ ने आश्रय लिया है सहज, ये दो पंक्तियां मैंने आपके सामने अभी-अभी गाई है। आपके मन में ये पंक्तियां बैठ जाए इसलिए मैं फिर कोशिश करूं आपके सामने गाने के लिए। और हो सके तो आप भी गाइयेगा, प्लीज़।

रचि महेस निज मानस राखा।

ग्वालियर के बारे में मैंने जो जाना उसमें लिखा है ये उसका पहले नाम था गोपाद्रि; गोपाल गिरि पहाड़ के नाम। गोपाल पहाड़ी उसका नाम है। इसलिए हमने राग भी पहाड़ी चुन लिया। उसके बारे में तो पुराना इतिहास मिल रहा है। उसमें गोपाल पहाड़ी भी कहते हैं इस मुल्क को। और पहाड़ियां भी लगी हुई हैं चारों ओर। इसलिए सोचा कि हमको जैसा आये ऐसा पहाड़ी राग में उसको गा लिया जाये।

रचि महेस निज मानस राखा।
पाइ सुसमउ सिवासन भाषा।।
रामकथा मुनिबर्ज बखानी।
सुनी महेस परम सुखु मानी।।

तो 'रामचरितमानस' के रचनाकार के नाम में तुलसी 'महेश' नाम का उच्चारण करते हैं। यद्यपि शंकर भी वो ही है, महादेव भी वो ही है, शिव भी वो ही है। यद्यपि ये सब शिव के सतनाम हैं; शिव के सौ नाम। तो शंकर, महादेव, हर, क्या-क्या नाम है सुनों यार! लेकिन 'मानस' के रचनाकार के रूप में तुलसी ने 'महेश' नाम का प्रयोग किया। 'मानस' की रचना किसने की? तो महेश ने की।

रामकथा के रचनाकार है महेश, नोट शंकर। है वही के वही लेकिन नाम पसंद यही किया। 'मानस' का रचनाकार महेश। लेकिन अपने हृदय में रखा और सुसमय जब मिला तब 'सिवासन भाषा।' सिवासन के दो अर्थ दादा बताते हैं। एक अर्थ है सिवासन मानी शिव मानी महेश ने जो अपनी रचना है 'मानस', जो हृदय में आज तक रखी वो पार्वती के सामने भाखा, गाया, उच्चारित किया, सुनाया। लेकिन एक अर्थ ऐसा ही है कि भगवान शंकर ने ये भाखना शुरू किया उस वक्त जो शिव का आसन था वो शिवासन था। एक नए आसन का संकेत 'मानस' कर रहे हैं। हमारे यहां योगा में तो कई प्रकार के आसन हैं। उसमें शिवासन उसके फिर अंतरंग कुछ अर्थ और निकलेंगे। शिवासन मैं बैठे हैं, ऐसा भी होता है। अब खुद की ही रामकथा सुनने के लिए ही महेश कुम्भज ऋषि के आश्रम में गए कि मैंने उमा को जो कथा सुनाई, पार्वती को जो सुनाई, जो मेरी रचना है वो खुद अपनी रचना सुनने के लिए कुम्भज ऋषि के पास गए। इसलिए वो पंक्ति का भी मैंने सहारा लिया।

रामकथा मुनिबर्ज बखानी।
सुनी महेस परम सुखु मानी।।

पहले दिन जो हमें बातें करनी होती है एक प्रवाही परंपरा के नाते सो ये है कि 'रामचरितमानस', सात सोपान में उसको संपादित किया गया है। प्रथम सोपान बाल, द्वितीय सोपान अयोध्या, तृतीय सोपान अरण्य, चतुर्थ सोपान किष्किन्धा, पंचम सोपान सुंदर, षष्ठ सोपान लंका, सप्तम सोपान उत्तर। कांड तो हमने वाल्मीकिजी से उठाकर लगा दिया है। तुलसी ने उसको सोपान कहा। हम अभ्यस्त हो गए हैं इसलिए प्रथम सोपान 'बालकांड', द्वितीय सोपान 'अयोध्याकांड' आदि शब्द प्रयोग हम करते हैं। बाकी तुलसी उसको सोपान कहते हैं। सीढ़ियां है सात। सीढ़ियां जो परमानंद पाने की, परम प्रसन्नता पाने की, परम उल्लास और आनंद पाने की, परम प्रेम पाने की, परम ज्ञान पाने की, परम वैराग्य पाने की सीढ़ियां ये सोपान है। तो सात सोपान में ये सद्ग्रंथ संपादित है।

'बालकांड' प्रथम सोपान का आरंभ करते हैं तब गोस्वामीजी सात मंत्रों में मंगलाचरण करते हैं। हमारे देश में ये बड़ी प्यारी परंपरा रही कि मंगल उच्चारण बाद में, पहले मंगल आचरण करो! ये बड़ी प्यारी वस्तु है। हम मंगल उच्चारण तो बहुत करते हैं लेकिन मंगल आचरण हम कितना करते हैं वो तो हम ही जानते हैं! तो हमारे ऋषि आचरण की पहली स्थापना करते हैं। तो मंगलाचरण के सात मंत्र 'रामचरितमानस' के प्रथम सोपान में गोस्वामीजी ने संस्कृत में उसका सर्जन किया। इससे पता लग जाता है कि गोस्वामीजी का संस्कृत ज्ञान कितना अद्भुत था! कई लोग ऐसा मानते हैं, उस समय आक्षेप करते थे, काशी तो पंडितों की नगरी रही तो कहते हैं, तुलसी को संस्कृत नहीं आता था! अरे यार, काशी में जो ये समय तुलसी रहे, संस्कृत ज्ञान का उसके संस्कृत मंत्रों से पता लग जाता है। लेकिन तुलसी को लगा कि लोकबोली में जाना जरूरी है। आखिरी व्यक्ति तक राम पहुंचे। आखिरी समाज का आखिरी व्यक्ति रामतत्त्व को अपनी बोली में समझे इसलिए तुलसी संस्कृत के परम विदग्ध विद्वान होते हुए भी उसको लोकबोली में ऊतार लाये। और हमारे सभी संतों ने यही काम किया।

आप 'रामचरितमानस' का पूरा क्रम देखे तो 'रामचरितमानस' का आरंभ होता है सात मंत्रों से और विराम होता है 'उत्तरकांड' में सात प्रश्नों से। आखिर में सात प्रश्न है। सात से शुरू होता है, सात से समापन हो जाता है। तो पहला मंत्र, पहला मंगलाचरण। मंगलाचरण का पहला मंत्र हम सबको ये आचरण दिखाना चाहते हैं कि वाणी में विनय रखे। इतना ही आचरण, 'वन्दे वाणीविनायकौ।' इतना ही सार निकालता है तलगाजरडा। संस्कृत भाषा में उसकी व्याख्या। और कई विद्वानों ने तो मंगलाचरण पर छोटे-छोटे ग्रंथ लिखे हैं साहब! रामकथा अद्भुत है!

मेरे युवान भाई-बहनों को मैं कहना चाहता हूं, पहला मंगलाचरण 'मानस' के सोपान का है, 'वन्दे वाणीविनायकौ।' तेरी वाणी में विनय रखने का आचरण कर। यही है मंगलाचरण। एक छोटा-सा सूत्रपात है। वाणी में विनय रखे मेरे देश की युवानी, मेरे देश के हर क्षेत्र के लोग। प्लीज़, वाणी में विवेक रखें। 'रामचरितमानस' के मंगलाचरण का पहला आचरण सूत्र है, 'वन्दे वाणीविनायकौ।' तेरी वाणी में तू विनय रख युवान। ऐसा बोलो कि वाणी में विश्वास हो। ऐसा बोलो कि वाणी में विनोद भी हो। ऐसा बोलो कि वाणी में वैराग्य हो। ऐसा बोलो कि वाणी में विवेक हो, विनय हो। इतना ही आचरण सूत्र है। पहला आचरण सूत्र 'मानस' का।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।
भवानीशंङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्।।

'रामचरितमानस' का दूसरा सूत्र मंगलाचरण का हे युवान, हे श्रोता, हे युवाश्रावक, हे युवाछात्र, हे युवान साधु, दूसरा आचरण सूत्र वो है, श्रद्धा और विश्वास की संपदा कायम साथ रखना। ये तेरे पास नहीं होगा तो तू योगी हो जाएगा दुनिया की दृष्टि में। तेरे साथ योगी का लेबल लग जाये तो भी तू भीतरी अवस्था का आनंद नहीं पाएगा यदि तेरे पास ये दूसरा आचरण सूत्र श्रद्धा और विश्वास न हो। शिव-पार्वती है श्रद्धा-विश्वास का ऐक्य। तो श्रद्धा से मिलेगा ज्ञान, विश्वास से मिलेगी भक्ति। तो 'मानस' के मंगलाचरण के मंत्रों का ये दूसरा आचरण सूत्र है, श्रद्धा और विश्वास रखना। अंधश्रद्धा और अंधविश्वास बिलकुल नहीं। इससे जीवन बरबाद हो जाएगा। तीसरा मंत्र-

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते।।

भगवान शिव को गुरु कहकर तुलसी ने मंगलाचरण के तीसरे मंत्र में हमें एक तीसरा आचरण सूत्र प्रदान किया। युवान भाई-बहन, मेरे और आपके लिए तीसरा आचरण सूत्र वो है कि कभी अपने बारे में नेगेटिव मत सोचो, नकारात्मक मत सोचो कि मैं पापी, मैं कलंकी, मेरा क्या होगा? नहीं, श्रद्धा और विश्वास के बाद ये सूत्र है, गुरु के पास पहुंच जाओ। तुम कैसे भी टेढ़े हो। जैसे बांके चंद्र को महादेव अपने भाल में रखता है वैसे गुरु तुम्हें अपने सिर की शोभा बनाएगा। ये भरोसा रखना। कोई बुद्धपुरुष का आश्रय करना ये तीसरा आचरण। फिर हम कैसे भी हो। जैसे भी हो कोई बुद्धपुरुष के पास पहुंच जाये तो हमें बुद्धपुरुष अपने भाल की शोभा बनाएगा। जैसे चंद्र वक्र है जिसके मस्तक में जो चंद्र है। पूर्णिमा का चांद नहीं है, वक्र है, टेढ़ा है, क्या हो गया? टेढ़ा भी पहुंच गया गुरु के पास तो शोभा हो गया गुरु की। अपने आप को इतना कोसो मत मेरे युवान भाई-बहन प्लीज़। हम पापी, हम निकम्मे, हम कोई काम के नहीं! नहीं, निराश मत होओ। उजाले को तो अपना उजाला होता है लेकिन कभी देहात में रहे होंगे तो पता लगेगा, अंधेरे को भी अपना एक उजाला होता है। हम कैसे भी हो, है। हमारे मध्यकालीन संतों ने गाया था-

हमारे हरि अवगुण चित ना धरो।

युवान भाई-बहनों, तीसरा आचरण सूत्र है, हम कैसे भी हो। दीक्षित दनकौरी साहब का बड़ा प्रसिद्ध शे'र है। मैंने बहुत बार आपके सामने पेश किया है कथाओं में। कैसे भी हो, कैसी भी घटना घटे, होंसला कम मत करो।

लाज़िम नहीं कि हर कोई हो कामयाब हो,
जीना भी सीख लीजिए नाकामियों के साथ।
या तो कुबूल कर मेरी कमज़ोरियों के साथ।
या छोड़ दे मुझे मेरी तन्हाइयों के साथ।

चौथा आचरण सूत्र; तुलसीदासजी इस सूत्र में आदिकवि वाल्मीकि को और कपीश्वर श्री हनुमानजी को स्मरते हैं और दोनों के लिए एक शब्द का प्रयोग किया-

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ।।

दोनों को विज्ञान विशारद बताया। युवान श्रोताओं के लिए चौथा आचरण सूत्र है, आदमी पढ़े; आज की जो-जो खोज हो उसीका सदुपयोग करे। नई-नई खोज करे। तुलसी कहते हैं, वाल्मीकिजी और हनुमानजी विशुद्ध वैज्ञानिक है। विशुद्ध विज्ञान ये चौथा आचरण सूत्र है। जितना सदुपयोग विज्ञान का किया जाये। आज जो टेक्नोलोजी है उसका विशुद्ध प्रयोग करना ये युवानों के लिए जरूरी है। चौथा आचरण सूत्र है विशुद्ध विज्ञान का आविष्कार, स्वीकार दोनों। युवा भाई-बहनों, ये विज्ञान का विशुद्ध उपयोग है; ये माईक सिस्टम है तो विज्ञान से ही प्राप्त हुई है। उसका सदुपयोग ये विशुद्ध है कि इससे रामकथा प्रसारित की जा रही है। आपके हाथ में टेलिफोन होगा, ये वैज्ञानिक खोज है और रामकथा सुनते-सुनते आप कोई सूत्र उसमें एकदम अपने फोन में संग्रहित कर लोगे तो ये वैज्ञानिक उपलब्धि है। ऐसा करते हो तो फोन का उपयोग करना। बाकी यहां बैठे-बैठे दूसरों को हेलो, ये नहीं! उसका विशुद्ध उपयोग जरूर करें आप। कथा में जितना उपयोगी हो इतना वैज्ञानिक उपकरणों का जरूर सदुपयोग करे।

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्।।

इस जगत को उद्भव करनेवाली, पालन करनेवाली और विनाश करनेवाली माँ जनक नंदिनी, जगतजननी जानकीजी की वंदना करते हुए मेरे गोस्वामीजी ओर आचरण सूत्र प्रदान करते हुए कहते हैं, सर्वश्रेय, सबका श्रेय करनेवाली जानकी। हमारे कर्मकांड, हमारे जीवन की कर्मयोजना केवल हमारे लाभ के लिए न हो, सबका श्रेय करनेवाली हो, ये आगे का आचरणसूत्र है। और भारत का तो यही मंत्र रहा।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।।

सबका श्रेय हो। सबका शुभ हो। सबका कल्याण हो। ये हमारे लिए आचरण सूत्र बने। सबके श्रेय की हम चिंता करे। सबका श्रेय सोचे।

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा।
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।।

पूरा ब्रह्मांड जिसकी माया से अभिभूत है और माया के कारण हमें एक भ्रम पैदा हो गया है। सत्संग इसलिए है कि एक जागृति पैदा हो, भ्रममुक्ति हो। आगे का आचरण सूत्र-

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति।

ये 'रामचरितमानस' के सातवें मंत्र में जो अभिप्राय गोस्वामी देते हैं मंगलाचरण में, वहां कहते हैं कि नाना पुराण, सब पुराण; आगम, वेद से सम्मत ये ग्रन्थ है 'मानस'। सब मिलेगा; और तुलसी कहते हैं, ये मैं दुनिया को विद्वत्ता के लिए या मैंने बहुत-बहुत संकलन किया ये नहीं। तुलसी कहते हैं, स्वान्तः सुख के लिए मैं मेरी भाषा में इसको डालूंगा। है तो शास्त्रों की बात, वेद की बात, पुराणों की। सब कुछ इसमें है लेकिन स्वान्तः सुख के लिए मैं उसको भाषाबद्ध करूं। ये सातवां आचरण सूत्र है। आचरण सूत्र सात, हम स्वान्तः सुख के लिए करें, फिर सर्व का सुख बन ही जाएगा, यस।

तो मंगल उच्चारण ये तत्त्वतः मंगल आचरण का संदेश है। ये सप्त आचरण सूत्र इस कथा के लिए है। और फिर तुलसी दुनिया को दिखाना नहीं चाहते थे कि मुझे संस्कृत आता है। संस्कृत हमारी दिव्यवाणी है, हमारी देववाणी है, इसलिए उसको आदर देकर के तुलसी फिर लोकबोली में उतर आये। लोकबोली का विद्वान संस्कृत का अपमान न करे और प्रार्थना कि संस्कृत का विद्वान लोकबोली की निंदा न करे। दोनों अधूरे सिद्ध हो जायेंगे। आजकल क्या होता है, विद्वान लोकबोली की आलोचना करते हैं, ये तो लोकबोली का कवि है, लोकबोली में सृजन करता है! ये अनधिकार चेष्टा हैं। अस्तित्व का गुनाह कर रहे हैं। और लोकबोली का भी ये अधिकार नहीं कि संस्कृत में क्या है? संस्कृत की ऐसी-तैसी! नहीं, लोकबोली को भी इसकी इज्जत करनी चाहिए। तो तुलसी कहे, हे युवान भाई-बहन, आप जो भी करो, किसी भी भाषा में करो लेकिन आपका हेतु हो स्वान्तः सुख। मुझे आनंद चाहिए। मैं क्यों कथा गाता हूं? आठ-दस दिन निकल जाते हैं तो मुझे अच्छा नहीं लगता बीच में कि भई, दस दिन बैठे हैं यार! चलो जल्दी कथा करो। ये स्वान्तः सुख है। आप क्यों सुनते हैं? मेरी कथा सुनने के बाद आपका धंधा ठीक से चलेगा? धंधा ठीक चले, न चले। शायद कथा में बैठ जाओ तो वहां घाटा भी हो सकता है। मेरा काम है आपसे संवाद करके आपको संवेदनशील बनाने का। मेरा काम है आपकी आंखें सूखी हो गई उसमें भीगापन लागने का। आपको स्वर्ग की एक कल्पना दिखाने का मेरी व्यासपीठ का काम है ही नहीं। तुम जहां हो वहां तुम स्वर्ग अर्जित करो। जहां हो वहां स्वर्ग निर्मित करो।

सात मंत्रों में संस्कृत में मंगलाचरण। फिर पांच सोरठे में लोकबोली में पांच देवों की वंदना की, स्मृति की। एक गणेश, दूसरे सूर्य, तीसरे भगवान विष्णु, चौथे भगवान शिव और पांचवीं पार्वती। मैं बार-बार याद दिलाऊं मेरे भाई-बहनों को कि जगद्गुरु आदिशंकराचार्य भगवान हमें पंच देवों की पूजा करने का आदेश देते हैं कि भारतीय सनातन धर्मावलम्बी को चाहिए पंच देवों का आश्रय करे। गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव और दुर्गा। और हम करते हैं। गणेश चतुर्थी, गणेश उत्सव मनाते हैं। सूर्य को जल चढ़ाते हैं, नमस्कार करते हैं, सूर्यपूजा करते हैं। विष्णु की पूजा हम करते हैं; पुरुष सूक्त का पाठ करते हैं। शिव का अभिषेक हम करते हैं। और दुर्गा की नव नवरात्रियों को उत्सव में, अनुष्ठान में हम बदल देते हैं। तो ये देश को पांच देवों की उपासना करने का आदेश जगद्गुरु आदि शंकर ने दिया। और तुलसी तो एकदम वैष्णव परंपरा में आते हैं। तुलसी ने एक समन्वय किया, एक सेतु निर्मित किया, जोड़ा, संवाद किया। गणेश की वंदना हम घर में करते हैं, उत्सव मनाते हैं, ये सब करो जरूर। लेकिन फिर एक बार कहूं कि

कई लोग कहते हैं कि गुरु की क्या जरूरत? उसका अभिप्राय, उसको हम आदर दें। लेकिन हम जैसों के लिए तो बिना गुरु मुश्किल है। खासकर के मैं आप पर भी कुछ बोझ न डालूं लेकिन मोरारिबापू के लिए तो गुरु चाहिए ही। बिनु गुरु हमारी कौन बिसात? इसलिए मैंने आज जो वक्तव्य दिया वो याद रखना, मैं 'रामायण' नहीं गा रहा हूं, मेरे गुरु को गा रहा हूं। ये मेरी गुरुनिष्ठा है। हम जैसों को गुरु चाहिए। गुरुपद को जिन्होंने आलोचनात्मक शब्दों से सम्बोधा है, वो छोड़िये! ये उसका घराना है, ये उनकी प्रकृति है। बाकी गुरु चाहिए।

गणपति विवेक के देवता हैं। आंतर्-बाह्य विवेक जितनी मात्रा में हम सध सकें ये गणेशपूजा है। सूर्य की पूजा; सूर्य को जल चढ़ाओ, सूय को नमस्कार करो, एक्सरसाईज़ के लिए भी अच्छा है। लेकिन यदि आप न कर पाएं तो उजाले में रहने का शुभ संकल्प ये सूर्यपूजा है कि जहां तक संभव होगा हम उजाले में जीयेंगे। हमारे उपनिषदों ने यही कहा, 'तमसो मा ज्योतिर्गमय।' हमें अंधेरे से उजाले की ओर लिए चलो। ये हमारी औपनिषदीय प्रार्थना है।

ऊंडा अंधारेथी प्रभु परम तेजे तुं लइ जा।
असत्यो मांहे थी प्रभु परम सत्ये तुं लइ जा।

कितना प्यारा शिखरिणी छंद है! बहुत प्यारा छंद है! उजाले में जीना मेरे श्रोता भाई-बहन, ये सूर्यपूजा है। विष्णुपूजा आप करो, करनी चाहिए जरूर लेकिन न कर पाओ तो विष्णु का अर्थ होता है व्यापकता। अपना दृष्टिकोण, अपनी विचारधारा विशाल रखो। हम संकीर्ण हो गए। विशाल दृष्टिकोण रखो, हृदय की भावनाएं विशाल हो, ये विष्णुपूजा। शिवपूजा; शिव का अर्थ होता है कल्याण। दूसरों के कल्याण की सोच ये है रुद्राभिषेक। और भवानी की पूजा माने हमारी श्रद्धा भंग ना हो। भवानी को श्रद्धा कहा है। तो इस रूप में हम पंच देवों की पूजा कर सकते हैं। और फिर पंच देवों का स्मरण करते तुलसी कहते हैं, मैं गुरु के चरणकमल को प्रणाम करता हूं। जो मनुष्यशरीर में तो दिखता है लेकिन महसूस होता है हरि है, नारायण है। जिसका बचन सूरज की किरण का काम करते हैं। मेरे अंतःकरण में मोह का अंधेरा जो है उसको मिटा देता है। ऐसे गुरुवंदना से शास्त्र का आरम्भ होता है। 'मानस-गुरुगीता' जिसको मेरी व्यासपीठ कहती है। तो पहला प्रकरण गुरुवंदना का है। आइये, उसकी कुछ चौपाइयां का हम गायन कर लें।

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

गुरु चरणकमल की वंदना की। गुरु चरणकमल की पराग की महिमा गाई। गुरु चरणकमल के नख के प्रकाश का जिक्र किया और गुरु चरणकमल की रज को अपनी आंखों में नयनामृत बनाकर के, नयनांजन बनाकर के तुलसी कहते हैं, मैं गुरुकृपा प्राप्त करके 'रामचरितमानस' का वर्णन करने जा रहा हूं। कई लोग कहते हैं कि गुरु की क्या जरूरत? उसका अभिप्राय, उसको हम आदर दें। लेकिन हम जैसों के लिए तो बिना गुरु मुश्किल है। खासकर के मैं आप पर भी कुछ बोझ न डालूं लेकिन मोरारिबापू के लिए तो गुरु चाहिए ही। बिनु गुरु हमारी कौन बिसात? इसलिए मैंने आज जो वक्तव्य दिया वो याद रखना, मैं 'रामायण' नहीं गा रहा हूं, मेरे गुरु को गा रहा हूं। ये मेरी गुरुनिष्ठा है। हम जैसों को गुरु चाहिए। गुरुपद को जिन्होंने आलोचनात्मक शब्दों से सम्बोधा है, वो छोड़िये! ये उसका घराना है, ये उनकी प्रकृति है। बाकी गुरु चाहिए।

तो ये गुरुवंदना की है। सबकी वंदना की। सबसे पहले पृथ्वी के देवता जिसको हम कहते हैं वो ब्राह्मण देवताओं को तुलसी ने प्रणाम किया। उसके बाद सज्जनों की वंदना की। उसके बाद संतों की वंदना की। उसके बाद साधु-समाज की वंदना की। उसके बाद दुर्जनों की, शठों की, खलों की, राक्षसों की, निशिचरों की, सबकी वंदना की। क्योंकि जिसकी आंख गुरु की कृपा से पवित्र हो जाती है उसको सबमें फिर हरि दिखने लगता है। और नरसिंह मेहता का बड़ा प्रसिद्ध पद जो महात्मा गांधी बापू से पूरे विश्व में पहुंच गया वो है-

वैष्णवजन तो तेने कहीए जे पीड पराइ जाणे रे।
परदुःखे उपकार करे ने मन अभिमान न आणे रे।
सकळ लोकमां सहुने वंदे निंदा न करे केनी रे।
वाच-काछ मन निश्चल राखे धन्यधन्य जननी तेनी रे।

किसी की निंदा न करें, सबमें हरि देखें। सब वंदनीय तुलसी को हो गया क्योंकि गुरुकृपा से आंख पवित्र हो गई। और आखिर में तुलसी ने ये कह दिया-

सीय राममय सब जग जानी।
करऊं प्रणाम जोरि जुग पानी।।

तो तुलसी ने पूरे जगत को सीतारामम्य समझकर प्रणाम किया। फिर माँ कौशल्या की वंदना की। महाराज दशरथजी की वंदना। फिर जनक महाराज की वंदना की। भरत की, शत्रुघ्न की, लक्ष्मण की वंदना की। और फिर बीच में वो हनुमानजी की वंदना करते हैं-

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।

आप सब जानते हैं, पहले दिन की रामकथा सदैव हम करीब-करीब हनुमंत वंदना पर रोक देते हैं। तो आइये, हम सब आज की कथा के आखिर में हनुमानजी की वंदना कर लें।

मंगल-मूरति मारुत-नंदन। सकल अमंगल मूल-निकंदन।।
पवनतनय संतन-हितकारी। हृदय बिराजत अवध-बिहारी।।

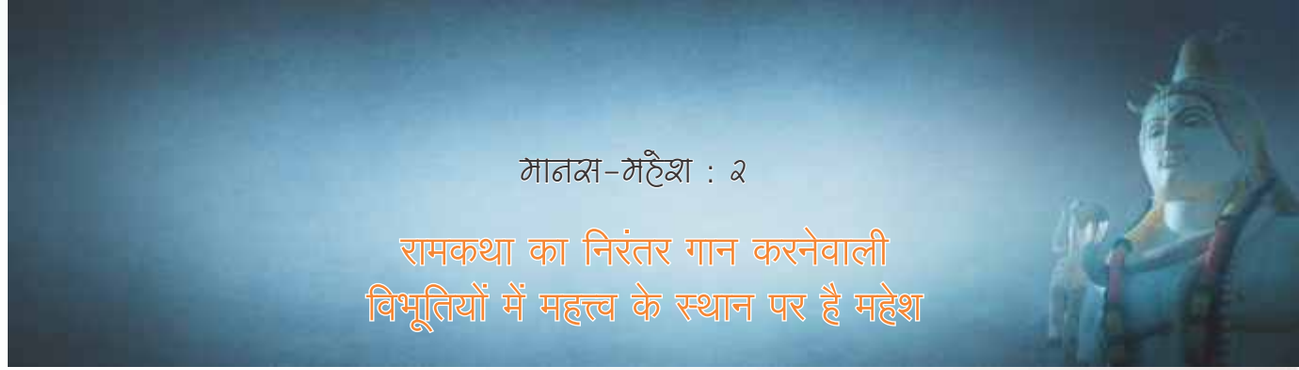

रामकथा का निरंतर गान करनेवाली विभूतियों में महत्त्व के स्थान पर है महेश

'मानस-महेश', जिसकी केन्द्रीय बातचीत इस कथा में हो रही है 'मानस' के आधार पर। और हम और आप मिलकर के एक संवाद कर रहे हैं। 'रामचरितमानस' में 'महेस' शब्द इकतीस बार फिर कहीं 'महेश' दो बार आया है। कहीं 'महेसा', 'महेसु', 'महेसू', एक गिनती के मुताबिक ४८ टाइम 'महेस' शब्द का उच्चारण पूज्यपाद गोस्वामीजी ने किया है। और मेरी समझ में गुरुकृपा से बहुत विशिष्ट रूप में गोस्वामीजी ने 'महेस' शब्द का प्रयोग किया है। जैसे कि कल हम चर्चा कर रहे थे कि भगवान महादेव के कई नाम हैं और तत्त्वतः सबका अर्थ एक ही है फिर भी 'रामचरितमानस' का सृजन किया वहां तुलसी ने नामोल्लेख किया है वो 'महेश' है। महेश ने इस की रचना की और वही रामकथा कुम्भज ऋषि के आश्रम में सुनने गये तो भी वहां शिव का नाम महेश ही लिखा है कि 'सुनी महेस परम सुख मानी।' बाप! तो हम और आप सब 'रामचरितमानस' का गायन तो करते हैं। यस, सब करते हैं लेकिन रामकथा का निरंतर गान करनेवाले 'रामचरितमानस' में केवल सात व्यक्ति हैं। सात व्यक्तियों ने 'मानस' का गान निरंतर किया है। निरंतर माने कोई भी समय उसका गायन के बिना गया नहीं। चाहे श्रोता हो न हो; चाहे जुबां से गाया जाए या मन से गाया जाए; चाहे प्रत्यक्ष गाया जाए या अप्रत्यक्ष गाया जाए। लेकिन निरंतर गान करनेवाली सात विभूतियों का नाम 'मानस'कार ने गिनकर बताये हैं। ऐसे सात नाम है, उसमें बिल्कुल मध्य में मीन्स महत्त्व के स्थान पर नाम है महेश का, जो निरंतर गान करते हैं। सृजक भी वो, श्रोता भी वो और निरंतर रामकथा का गायन करने के बाद 'नेति' कहनेवाला भी महेशतत्त्व है। ऐसा 'मानस' में अंकित है।

सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान।
नेति-नेति कहि जासु सुन करहिं निरंतगान।।

अखंड गान करने के बाद इन सभी महापुरुषों ने कहा, 'नेति-नेति'; उसका नाम हैं सारद माने सरस्वती निरंतर रामकथा गाती है। और मुझे बहुत ख़ुशी होती है कि रामकथा के गायन की शृंखला में सबसे पहले गोस्वामीजी ने एक महिला का नाम लिखा। कौन कहता है, भारत के ग्रंथों ने स्त्रीयों का अपमान किया है? बिना शास्त्र पढ़े प्लीज़, गतानुगति करके शास्त्रवेत्ता पर ऊंगली न उठाई जाए। मैं तो आपसे 'मानस' का गायक होने के नाते कहूं, 'मानस' में जो मातृशक्ति को आदर दिया है। कल हम 'रामचरितमानस' के मंगलाचरण की चर्चा करते थे उसमें तुलसी ने पहला मन्त्र जो लिखा, उसमें किसी पुरुष की वंदना नहीं है पहले। तुलसी के नाम भी ये आरोप है, तुलसी नारी निंदक हैं! उस पर छोटी-छोटी पत्रिकाएं भी पचास-साठ साल पहले बहुत गलत शब्दों में छपी गई थी! लेकिन कोई ये तो नहीं देखता कि 'मानस' का आरम्भ एकमात्र शक्ति की वंदना से हुआ है।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

हर वक्त हमारी एक परम्परा-सी बन गई है कि गणेश से ही शास्त्र शुरू होता है। 'स्वस्ति श्री गणेशाय नमः।' उसके बाद 'श्री सरस्वत्यै नमः।' उसके बाद 'श्री गुरुभ्यो नमः।' उसके बाद वैष्णवी परंपरा में 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।' ऐसे शास्त्र चलते हैं। लेकिन तुलसी ने क्रांति की। तुलसी ने इस जड़ परंपरा के दो टुकड़े कर दिए ये कोई नहीं देखता! तुलसी ने गणेश की वंदना पीछे कर दी और सरस्वती की वंदना पहले कर दी, 'वन्दे वाणीविनायकौ।'

दूसरा प्रमाण, आरंभ से ही तुलसी मातृशक्ति के आदर में खड़ा हैं। 'भवानीशङ्करौ वन्दे।' तो पहले भवानी की वंदना की। ये पाश्चात्य जगत जो बाद में सीखा, लेडिज़ फ़र्स्ट। हमारे देश में पहले से मातृवदंना हुई। उपनिषद से लीजिए,

'मातृ देवोभवः।' वहीं से शुरू होता है। तुलसी के ग्रन्थ में भी कहीं मातृ के बारे में आपके मन में दुविधा पैदा हो ऐसी पंक्तियां मिल जाए तो किसी बुद्धपुरुष से समझने की कोशिश करना, बुद्धिमान से नहीं। बुद्धिमान तर्क-वितर्क करके तुम्हें ओर उलझा देगा क्योंकि उसके भी अपने आग्रह होते हैं। किसी बुद्धपुरुष को पूछना। एक बात याद रखना, बुद्धपुरुष आप पूछो उसका उत्तर नहीं देता, समाधान देता है। उत्तर और समाधान में अंतर है। उत्तर तो कोई भी दे देगा, कोई भी। थोड़ा अक्लवान है, उत्तर दे देगा, लेकिन पिटे-पिटाये उत्तरों से तुम्हारे मन में फिर ओर दस नए प्रश्न प्रगट हो जायेंगे! फिर वो ज्यादा बुद्धिमान है तो उसका ओर सतर्क जवाब देगा, फिर हजारों प्रश्न! समाधान का क्या?

मेरी व्यासपीठ कहा करती है कि बुद्धपुरुष प्रश्न का उत्तर नहीं देता, साधक को जागृत करता है। जवाब देने की जवाबदारी बुद्धपुरुषों की नहीं, जागृत करने की जवाबदारी बुद्धपुरुषों की है। ऐसा जागृत कर देता है कि किसी से पूछने को सवाल ही नहीं रहता। दर-दर भटकने का आयास-प्रयास सब बंद हो जाए। तो यहां भवानी को पहले वंदन किया है। इस मंगलाचरण में आप जाए, सीताराम की वंदना की तो गोस्वामीजी कहते हैं, 'सीतारामगुणग्राम पुण्यारण्यविहारिणौ।' पहले जानकी की वंदना की। वंदना करने में भी सीता अग्र है। 'यन्मायावशवर्तिं विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा।' तो जानकी सबका श्रेय करनेवाली; उसकी वंदना पहले चौपाइयों में गाई है। तो-

जनकसुता जग जननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।
ताके जुग पद कमल मनावउँ।
जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ।।

तुलसी का एक बहुत प्यारा शब्द है 'पुनि पुनि' का मतलब उसके बाद, उसके बाद, उसके बाद, उसके बाद। तुलसी शब्द लगाते हैं, 'पुनि मन बचन करम रघुनाथ।' सीता के बाद राम। पहले जानकी; और भगवान वाल्मीकि तो कहते हैं, सीता का चरित्र ही महान है। राम तो छाया है। तो मातृशक्ति का आदर हुआ है; होना ही चाहिए। बाकी कुछ प्राकृतिक भेद जो है वो तो रहेगा ही रहेगा। उसको आप मिटा नहीं सकते।

तो मुझे बड़ा प्यारा वचन लगा कि 'मानस' की सात महा महिमावंत व्यक्तियों ने निरंतर गान कर जो 'नेति' शब्द का उच्चार किया उसमें पहला नाम स्त्री का है। अब तो छूट हो गई है, अच्छा हुआ है वरना व्यासपीठ पर बैठकर स्त्री को भगवत्कथा कहने का है, ऐसी इज़ाज़त भी नहीं दी जाती थी। अभी ये तो बीस साल के अंदर की घटना है कि माताएं व्यासपीठ पर आकर कथा गाने लगे। बाकी कहां घमंडी पुरुष उसको इज़ाज़त देता था कि तुम बैठो। कहते हैं, स्त्री को अधिकार नहीं! शुद्धाशुद्धि का भेद निकालते थे! अरे, पिटी-पिटाई परंपरा को क्यों पकड़ते हो? प्रवाही परंपरा में जीओ। प्रवाही गंगा की धारा होनी चाहिए परंपरा। तो नारी पहली गायक बताई यहां। ये आदर है। तो माताएं कथा गाती हैं आज। गाएं तो इसमें क्या बुरा है? पिटी-पिटाई परंपराओं ने बहुत नुकसान किया! ये तो हमारे कुछ बुज़ुर्गों ने शुरू कर दिया था। फिर हमने तो जोर-शोर से उसकी कृपा और आशीर्वाद लेकर शुरू कर दिया। बाकी कथा में संगीत मना थी। गाना-बजाना कथा में नहीं! ये सब क्या है? संगीतवाली कथा!

आदमी चुक जाता है यार अपने आग्रहों के कारण! तुम्हारे ग्वालियर का एक शायर अतुल अजनबी, उसका एक शे'र सुनिए। मैं लिखकर लाया हूं। हम चुके जा रहे हैं! हम लम्हा चुके जाते हैं और हम बहुत घाटे का सौदा करते हैं। अतुल अजनबी साहब का एक शे'र सुनिए-

बस एक लम्हें में दुनिया बदलनेवाली थी।
अगर वो मेरा जरा ओर इंतज़ार कर लेता।

वो एक मिनट ज्यादा इंतज़ार कर लेता तो उसकी दुनिया बदल जाती लेकिन जल्दी में इतना था कि इंतज़ार करना उनके नसीब में नहीं! सीधे-सादे शब्दों में शायर अपना वक्तव्य दे रहा है।

जमाना मुझ पर अगर एतबार कर लेता।
मैं आंसूओं का समंदर भी पार कर लेता।

हम लम्हें को चुक जाते हैं। जल्दी में आगे निकल जाते हैं। जरा सोचिए। तो मातृशरीर व्यासपीठ पर बैठकर कथा करने लगी है। उसको ज्यादा समय नहीं हुआ है साहब! बीस-पचीस साल से ही ये सब है। अब माताएं आ रही है, आनी चाहिए क्योंकि 'मानस' ने कहा, सबसे पहली निरंतर गान करनेवाली हमारी एक महिला है। और माताएं जितना अच्छा गा सकती है, पुरुष इतना अच्छा नहीं गा सकता; लाख चेष्टा करे! तो सबसे पहले गायन करनेवाले में माँ सरस्वती का नाम है। वीणा के साथ वो गाती है रामकथा, भगवत् चरित्र, परम चरित्र जो कहो, हमारा कोई आग्रह नहीं। जो परमतत्त्व है उसको गाती है। कोई

राम को गाये, कोई कृष्ण को गाये, कोई शिव को गाये, कोई दुर्गा को गाये; मुझे कोई आपत्ति नहीं। कोई अल्लाह को गाये, कोई बुद्ध को गाये, कोई महावीर को गाये। क्या फ़र्क पड़ता है?

तो बाप! पहले से मातृशक्ति ने गाया है। निरंतर गान करके 'नेति नेति' कहनेवालों सात में पहला नाम भगवती सरस्वती का है। वीणावादिनी और वाग्वादिनी दोनों है। वाणी ओर वीणा की अधिष्ठात्री हैं ये। जो वाणी प्रगट करती है और वीणा बजाती है। 'सारद सेस'; अब देखो, तुलसी की रेंज देखो! सरस्वती ब्रह्मलोक और शेष पाताल लोक। दूसरा कौन गा रहा है? जिसको हजार जीभ है। 'सहस मुख सेस', शेष नारायण के मुख में सहस्र जुबान है। और वो हजार जिह्वा से एक तो पृथ्वी का पूरा भार अपने सिर पर है। और फिर भी वो गाना बंद नहीं करते, निरंतर गाते हैं। इसलिए दूसरा नाम पातालवासी का लिया। पहला नाम ब्रह्मलोकवासी, दूसरा नाम पातालवासी। 'सारद सेस महेस', लेकिन ये गायक हमको निकट पड़ता है क्योंकि ये पृथ्वी पर रहनेवाला आदमी है। शेष पाताल में, सरस्वती ब्रह्मलोक में, लेकिन मेरा महादेव-महेश पृथ्वीलोक में। और वो भी भारत में, कैलास में, जहां देखो गांव-गांव बैठा है महेश। वो हमारा लगता है। 'सारद सेस महेस बिधि।' फिर ब्रह्मलोक। विधाता, ब्रह्माजी चतुर्मुख से गायन करते हैं। 'सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान।' आगम मीन्स शास्त्र; शास्त्र गाते हैं। निगम माने वेद-पुराण। आगम, निगम, पुराण निरंतर जिसका गुणगान गाते हैं।

तो 'मानस-महेश'; चूक हो सकती है लेकिन पहली बार 'महेस' शब्द का प्रयोग तुलसी ने यहां किया है। 'सारद सेस महेस बिधि।' तो महेश सृजक है 'मानस' का। महेश परम सुख मानकर 'मानस' का श्रोता है। और भगवान महादेव जो महेश नाम से इस कथा में केन्द्रस्थ है वो निरंतर गाते हैं। और उसके बाद 'महेस' शब्द का फिर प्रयोग दूसरी बार आता है वो पंक्ति कल भी गाई थी-

गुर पितु मातु महेस भवानी।
प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी।।

गोस्वामीजी कहते हैं, मैं गुरु को प्रणाम कर रहा हूं, मैं माता को प्रणाम कर रहा हूं, मैं पिता को प्रणाम कर रहा हूं, भगवान महेश को मैं प्रणाम करता हूं और माँ भवानी को प्रणाम करता हूं क्योंकि वो दीनों को दान देनेवाले हैं। तो गुरु भी महेश, माता-पिता भी महेश और भवानी भी महेश। क्योंकि अर्धनारीश्वर है ये। 'वागर्थौविवसंपृक्तौ' कालिदास कहते हैं। 'मानस' कहते हैं, 'गिरा अर्थ जल बीच सम' भिन्न होते हुए अभिन्न है। तो वहां शिव का नाम महेश करके पुकारा गया। फिर तुलसी कहते हैं, कुछ साबर मंत्र है संसार में। पंडित लोगों को उसमें पता कम पड़ता है। देहाती लोग जानते हैं साबर मंत्र। उसका कोई बंधारण नहीं होता। कोई ठीक से प्रासानुप्रास, वर्णानुप्रास, शब्दानुप्रास कुछ नहीं; नथिंग। कोई मेल नहीं बैठता किसी से उसका, ऐसे मंत्र कुछ होते हैं, बिना मेल के शब्द, अक्षर उसका कोई अर्थ नहीं निकलता। उसका ठीक से जाप भी आप नहीं कर पाते। फिर भी उसमें भगवान शंकर का-महेश का प्रताप है इसलिए लोक तक प्रसिद्ध हो गए साबर मंत्र। साबर मंत्र सामान्य अर्थहीन होते हुए भी महेश प्रताप से उसकी ऊंचाई बढ़ जाती है क्योंकि महेश छू जाता है। विराट जिसको छुए अथवा तो क्षुद्र जिस विराट को एक बार छू ले, विराट हो जाता है। ये नियम है। विराट को छूना। हम क्यों सद्गुरुओं के चरणों को छूने की कामना करते हैं? उसकी एक महिमा है। किसी का व्रत हो अथवा तो किसी का स्वभाव हो कि कोई छुए जिसको अच्छा न लगता हो तो वहां नहीं, लेकिन हमारे यहां चरणस्पर्श की महिमा भी तो है।

'रामचरितमानस' के एक बिलकुल वंचित उपेक्षित पात्र के मुंह में मेरे गोस्वामीजी ने ये शब्द दिए हैं कि राघव, केवट बोलता है, मैं बिना पैर धोये आपको नौका में नहीं बिठाऊंगा क्योंकि आपके पैर का स्पर्श कुछ गजब है! एक शिला छू गई आपको या तो आपने छू लिया तो छूते ही शिला सुंदर औरत में परिवर्तित हो गई! उसके मतलब का एक शे'र मैं लिख लाया। ये मैं ये बोलूंगा तो वो पक्का नहीं था लेकिन शे'र अच्छा लगा तो मैं ले आया। अतुल साहब के दो-तीन शे'र मैंने कहे। ये है एक ओर शायर के कुछ शे'र, उसमें ये छूने की बात आती है। सुने, शे'र सुने-

उसे छूने का अफ़सोस अब करूं तो क्या।
हाथ खुद भी कभी मैं बढ़ा न पाया था।

अब अफसोस बेकार है क्योंकि मैं ही हाथ बढ़ा नहीं पाया था। छू लेता तो काम हो जाता। वो मना भी नहीं करता। छू लेता, लेकिन मैं ही हाथ बढ़ा नहीं पाया था। अब उसका अफसोस करूं तो क्या करूं? अब बेकार बात है। छू लिया होता तो गज़ब हो जाता, क्रांति घट जाती। और बहुत प्यास शे'र सुनिए साहब!

फिर उसके बाद तो हर रोशनी हुई मेरी,

एक फ़कीर के दर पे दीया जलाया था।

एक उस संत की देहरी पर, कुटिया पर मैंने दीया जलाया उसके बाद तो दुनिया की सभी रोशनी मेरी हो चुकी थी। किसी सद्गुरु के चरणों में मैंने एक दीप जलाया। ये राज कौशिक के शे'र है।

गोस्वामीजी कहते हैं, हमारे पापों का समापन किसी बुद्धपुरुष के दर्शन से ही होगा। कितने क्रियाकर्म करेंगे? कितने प्रायश्चित्त कर्म करेंगे? थक जायेंगे। छोटी-सी उम्र है। बुद्धपुरुष को निहारा जाए। वो यदि छू ले तो जन्म-जन्म के कर्म जंजाल खत्म हो जाए। उनके मुख से वचन निकले वो यदि हम सुन ले तो मन मोह से मुक्त हो जाये।

मुख देखत पातक हरै परसत करम बिलाहिं।

बचन सुनत मन मोह गत पुरब भाग मिलाई।।

गोस्वामीजी कहते हैं, हमारे पूर्व के पुण्य हो अथवा तो हमारे पूर्वजों की राशि हो तो ही वंश में ऐसा किसी को लाभ मिल जाता है, दुर्लभ है। भगवान का दर्शन हो ऐसी भी मांग ना हो तो अच्छा है। यद्यपि भक्ति संप्रदाय में की गई है कि हमें दर्शन हो। दर्शन हो, ये अच्छी भावना है, अच्छी लालसा है, कृष्णदर्शनलालसा। ये अच्छी लालसा है लेकिन यदि कथा सुनते-सुनते विवेक संपन्न हुआ है तो हरि के दर्शन की मांग भी छूट जाये। मांगमात्र बंधन है। यदि मांगे बिना न रह पाए, जीव के स्वभाव के कारण तो ऐसा ही मांगो कि हे ठाकुर, तू जिसको प्यार करता हो ऐसे कोई संत का दर्शन करा देना। कोई साधु के आमने-सामने हमें मुलाकात करा देना। कोई साधु मिल जाये।

साधु के लिए कोई विशेषण की जरूरत नहीं है। संत को तुलसी ऐसे शीतल संत कहते हैं। लेकिन मुझे कहने की इच्छा है, वो स्वाभाविक साधु है। जिसने कोई आयास-प्रयास नहीं किया है। स्वाभाविक साधुता जिसमें हो। साधु मैं उसको कहता हूं जिसका स्वभाव सबको अच्छा लगे। बहुत कठिन है, बहुत कठिन। सबको स्वभाव प्रिय लगे। अरे, पांच व्यक्ति एक छोटा-सा परिवार हो, एक का स्वभाव चार ओरों को अच्छा नहीं लगता! स्वभाव का मेल नहीं! इसीलिए वो संवाद नहीं हो रहा है समाज में। स्वाभाविक साधु मिल जाये कोई, सहज साधु मिल जाये कोई। और सहज साधु जो होता है उसको संकट बहुत सहन करना पड़ता है। याद रखना, सहज साधुता सस्ता सौदा नहीं है, बहुत महंगा सौदा है। नियति उसको बहुत मारती है, बहुत पिटती है। चूर-चूर कर देती है! तोड़ देती है! खत्म करने के कगार पर लिए चलती है! और सहज साधु उससे भी बाहर निकलता है, बाहर निकलता है, बाहर निकलता है, बाहर निकलता है। वो सहज; ऐसा साधु मिल जाए।

'मानस' मार देता है साहब! हमें तो कभी-कभी लगता है कि प्रारब्ध नहीं मारेगा, ये 'मानस' की चौपाईयां मार डालेगी, खत्म कर देगी ये! हर पंक्ति आंसू में कलम डुबोकर मेरे पूज्यपाद बुद्धपुरुष गोस्वामीजी ने लिखी है। मैं गाने के लिए अपने परम सौभाग्य की सराहना करता हूं और आप सुनते हैं, आपके भाग्य की भी सराहना करता हूं। ये कोई सामान्य घटना नहीं है साहब! भरत के वचन, मेरे प्रभु ने इस जगत में जन्म लेकर दुनिया को उजागर कर दी है, प्रकाशित कर दिया है। कैसा राम? दुनिया में रूप तो कईयों के पास है। कामदेव के पास बहुत रूप है, यस। यद्यपि मेरा राम कोटि काम कमनीय है। रूप का वरदान तो अल्लाह कईयों को दे देता है लेकिन रूप की शोभा शील से होती है। शील कहां से लाया जाये? राम में रूप है, राम में शील भी है। राम शील सिंधु है। भारत ने, हमारे इस पवित्र देश ने शील की महिमा गाई। कभी किसी के बल की महिमा नहीं गाई। बल किसी के पास हो, स्वागत। लेकिन बिना शील का बल हत्यारा है; विघटनवादी है; संघर्ष करता है। अहंकार से बलवान जो है, उस खुद का ये पतन करता है। शील चाहिए। ये लंका का एक बुद्धिमान महिपति रावण भी जानता है। इसलिए अंगद को कहता है कि अंगद, तेरी सेना में मेरे साथ लड़े ऐसा है कौन? तेरा राम जो तपस्वी है, जो पत्नी के वियोग में दु:खी है, वो क्या खाक मेरे से लड़ेगा? बलक्षीण है ये। उसका छोटा भाई अपने भाई के दु:ख से पीड़ित है। वो क्या लड़ेगा? जामवंत है, लेकिन बूढ़ा हो गया है। नल-नील इजनेरी काम जाने, शिल्पकार्य जाने, सेतु बना सकता है, ब्रिज बना सकता है, मेरे साथ युद्ध नहीं कर सकता। और अंगद, तू और तेरा चाचा सुग्रीव ये तो नदी के तट के पेड़ हो। पेड़ के मूल नदी के तट को काटता है और नदी का तट पेड़ के मूल को। एक-दूसरे को काटने में लगे हो! और मेरा भाई विभीषण, बचपन से जानता हूं; इससे डरपोक दुनिया में कोई नहीं है। भीरु से भीरु मेरा भाई है। मेरे साथ लड़ेगा कौन? बोलते-बोलते रावण बोला कि तुम्हारी सेना में एक है, 'है कपि एक महाबल सीला।' एक बंदर है, मेरे जैसा बलवान है। शायद बल से तो उसके साथ भीड़ पाऊंगा लेकिन उसका प्लस पोईन्ट है शील, जो मेरे में नहीं है।

रूप सील सुख सब गुन सागर।

राम जनिम जगु कीन्ह उजागर।

जब मेरे सद्गुरु भगवान दादा उसकी व्याख्या करते थे साहब, गज़ब होता था! एक छोटी-सी परसाल में प्रेम की बाढ़ आने लगती थी जब वो गाते थे! अब देखो स्वभाव की महिमा।

पुरजन परिजन गुरु पितु माता।

राम सुभाउ सबहि सुखदाता।।

इतने को अपना स्वभाव पसंद हो जाये तो समझना, हमारे में सहज साधुता आई है। पुरजन का अर्थ है, नगर के लोग, अयोध्या राष्ट्र के लोग। और उस समय महाराज दशरथजी का सार्वभौम शासन था, इसका मतलब पूरे दुनिया की जनता जिसके स्वभाव की सराहना करती है। पुरजन का मेरा मतलब सीमित नहीं है। पुरजन माने राष्ट्र के सभी लोग। इवन आंतरराष्ट्रीय लोग भी जिसके स्वभाव की सराहना करे कि इसका स्वभाव सुखदायी है। कोई आदमी इतना विस्तृत हो जाता है कि दुनिया उसके स्वभाव की आरती उतारे। लेकिन परिजन, कुटुंबीजनों को अनुकूल होना बहुत कठिन है। परिवार का आप ध्यान रखो, आप सब तरह से खुश रखो तो हो सकता है तुम्हारा स्वभाव परिवारवालों को भी सुखदायी हो जाये। लेकिन है सांसारिक संबंध। लेकिन सहज साधुता वो है जिसका स्वभाव उसके गुरु को भी अच्छा लगे कि स्वभाव में तो मेरे से भी आगे निकला यार! आश्रित का स्वभाव बुद्धपुरुष को भी जब प्रिय लगने लगे कि आहाहा! क्या स्वभाव है! बाप को स्वभाव अच्छा लगे बेटे का, माँ को अच्छा लगे। संत भरत बोले जा रहे हैं, बोले जा रहे हैं, माँ-बाप को स्वभाव अच्छा लगे; राष्ट्र को स्वभाव अच्छा लगे; गुरु को भी स्वभाव अच्छा लगे, सुखदायी लगे, लेकिन बैरी भी जिसके स्वभाव की सराहना करे। दुश्मन भी राम के स्वभाव की बड़ाई कहते हैं। राम साधु है। लेकिन साधुता, सहज साधुता बड़ी कसौटी है, बड़ी कसौटी है।

हमारी चर्चा चल रही है कि क्षुद्र विराट को छू ले, या विराट क्षुद्र को छू ले तो साबर मंत्र भी महेश के प्रताप से कितना महिमावंत हो जाता है! वहां गोस्वामी 'महेस' शब्द का प्रयोग करते हैं। ओर आगे चलें-

महामंत्र जोइ जपत महेसू।

कासी मुकुति हेतु उपदेसू।।

रचि महेस निज मानस राखा।

पाई सुसमउ सिवा सन भाषा।।

रामकथा मुनिबर्ज बखानी।

सुनि महेस परम सुखु मानी।।

गुर पितु मातु महेस भवानी।

प्रनवऊं दीनबंधु दिन दानी।।

तो मूल बात 'महेस' शब्द जहां-जहां मेरे पूज्यपाद गोस्वामीजी ने रखा है उसको दृष्टिगत रखते हुए, जो गुरुकृपा से प्रवाह में आये उसको दृष्टिगत रखते हुए हम 'मानस-महेश' की चर्चा कर रहे हैं। लेकिन पंक्ति नाममहिमा की ओलरेडी क्रम में आ चुकी है। 'महामंत्र जोई जपत महेसू।' वहीं से ही आगे बढ़ जाएं।

कल कथा के प्रवाह में हम सब हनुमानजी की वंदना कर रहे थे। हनुमानजी की नितांत आवश्यक वंदना गोस्वामीजी ने रामकथा के प्रथम सोपान में क्रम में उठाई। मैं कहना चाहूंगा, हर वक्त कहता हूं, दोहरा रहा हूं कि आप किसी भी संप्रदाय के हो; किसी भी धर्मावलंबी हो; किसी देश, किसी जाति के, भाषा के, कोई भी हो, मुबारक। आपकी कोई भी साधना पद्धति हो, मुबारक। आपके गुरु ने जो साधना दी है, पकड़े रहियो लेकिन हनुमंत तत्त्व का आश्रय करने से प्राणशक्ति बढ़ती है और हनुमानजी पीछे

रामकथा का निरंतर गान करनेवाले 'रामचरितमानस' में केवल सात व्यक्ति हैं। सात व्यक्तियों ने 'मानस' का गान निरंतर किया है। निरंतर माने कोई भी समय उसका गायन के बिना गया नहीं। चाहे श्रोता हो न हो; चाहे जुबां से गाया जाए या मन से गाया जाए; चाहे प्रत्यक्ष गाया जाए या अप्रत्यक्ष गाया जाए। लेकिन निरंतर गान करनेवाली सात विभूतियों का नाम 'मानस'कार ने गिनकर बताये हैं। ऐसे सात नाम है। बिलकुल मध्य में मीन्स महत्त्व के स्थान पर नाम है महेश का, जो निरंतर गान करते हैं। सृजक भी वो, श्रोता भी वो और निरंतर रामकथा का गायन करने के बाद 'नेति' कहनेवाला भी महेशतत्त्व है।

रहकर हमारी साधना में हमें पुश करते रहते हैं, धक्का देते हैं। और मैं बहुत बार-बार इतने सालों से स्पष्ट कह रहा हूं कि जहां उसके विशेष नियम हो तो यहां जिद्द ना करे हनुमानजी की पूजा करने की, बाकी जहां ऐसे कोई नियम लागू ना होते हो तो हनुमानजी की पूजा मातृशक्ति भी कर सकती है। 'हनुमानचालीसा' मेरे देश की माताएं भी कर सकती है। 'सुन्दरकांड' का पाठ माताएं भी कर सकती है। हां, कुछ विशेष नियमावलि हो तो निभानी चाहिए। इसमें जिद्द क्यों? लेकिन मेरा आग्रह इतना तो जरूर कि परंपरा जड़ ना हो जाये इसका ध्यान रखे; परंपरा प्रवाही रहे। तो जहां हनुमानजी की कुछ विशेष साधना है वहां हनुमानजी का स्पर्श वर्ज्य हो, पूजा वर्ज्य हो तो जिद्द न करे। बाकी सब कोई उसकी साधना कर सकता है। हनुमानजी पवनपुत्र है, हमारी श्वास है। और श्वास तो माताओं के अंदर भी चलती है। तो हनुमानजी तो अंदर ही घूम रहा है। किसी भी धर्मावलंबी हो मुबारक। लेकिन हनुमंततत्त्व, हनुमानजी बिनसांप्रदायिक है। वायु है उसका कोई संप्रदाय नहीं होता। मुसलमान की नाक में मुसलमान पवन नहीं जाता। हिन्दु की नाक में हिन्दु पवन नहीं जाता। ईसाई की नाक में ईसाई पवन नहीं, मेरा हनुमान ही जाता है। चाहे कोई भी हो।

हनुमानजी की वंदना की। सुग्रीव आदि सखाओं की वंदना की गोस्वामीजी ने क्रम में। वंदना भी है और पात्रपरिचय भी है मेरी समझ में। उसके बाद पहली माँ की वंदना, फिर राम की वंदना। सीताराम की संयुक्त वंदना। उसके बाद नव दोहे में, बहत्तर पंक्ति में, पूर्णांक में गोस्वामीजी ने रामनाम की वंदना और रामनाम की महिमा का विपुल वर्णन किया है। गोस्वामीजी कहते हैं, मैं रामनाम की वंदना करता हूं। परमात्मा के तो कई नाम हैं लेकिन इनमें से रघुवर राम की मैं वंदना करता हूं। जिसको जो प्रिय है, इसमें कोई भेद की बात नहीं। गोस्वामीजी कहते हैं, इस नाम को, रामनाम को महामंत्र की मानसिकता से भगवान महेश जपते हैं और काशी में मुक्ति का भंडारा चलाते हैं।

महात्मा गांधीजी को किसी ने पत्र लिखा कि आप राम में इतनी आस्था रखते हैं तो कुछ कहो। तो महात्माजी ने कहा, रामनाम के बारे में मैं सिद्धांत पेश नहीं कर रहा हूं, मेरी अनुभूति पेश कर रहा हूं। और उसने लिखा कि रामनाम जपते-जपते मैं उस स्थिति में पहुंच गया हूं कि मैं शरीर छोड़ सकता हूं लेकिन रामनाम नहीं छोड़ सकता। ये मेरा वक्तव्य नहीं है, गांधीबापू का वक्तव्य है। ये है नाम की महिमा। भगवान राम का अवतार तो त्रेतायुग में हुआ। आज कलियुग में प्रत्यक्ष रूप में राम हमारे पास नहीं है लेकिन उनका नाम हमारे पास है। तो त्रेतायुग में भगवान राम ने जो-जो लीलाएं की, आज कलियुग में हम जैसों के लिए नाम महाराज वही लीला कर रहे हैं।

नहि कलि करम न भगति बिवेकू।
राम नाम अवलंबन एकू।।
कहौं कहां लगि नाम बड़ाई।
रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।

गोस्वामीजी कहते हैं, कहां तक नाम महाराज की बड़ाई गाउं? क्योंकि स्वयं राम अपने नाम की बड़ाई गाने आये तो राम भी नहीं गा सकते! तो तुलसीजी ने नाम की महिमा का बहुत गायन किया। युवान भाई-बहन, आप प्रभु का नाम लेना। मंत्र जपो अच्छी बात है लेकिन उसमें अनुष्ठान, विधि-विधान लागू होते हैं। नाम में विधि-विधान की जरूरत नहीं। नाम की एक ही विधि है विश्वास। और 'विनयपत्रिका' में गोस्वामीजी विश्वास कहकर रामनाम की महिमा गाते हुए एक पद लिखते हैं-

बिस्वास एक राम-नामको।
मानत नहिं परतीति अनत ऐसोइ सुभाव मन बामको।।

तो प्रभु का नाम। मैं व्यासपीठ से यही बार-बार दोहराता हूं कि हे मेरे भाई-बहन, सब कुछ संसार के काम कर लिए। रात को घर आये। भोजन किया। बीबी-बच्चों के साथ बैठ लिए। चलो, टी.वी. भी देख लिया। हास्य-विनोद कर लिया। फिर सोने की बात है। हल्के कपड़ें पहन लिए बैठे हैं। कुछ पढ़ा। बस, अब सोने के सिवा कोई काम बाकी नहीं है। और तब भी आपको नींद ना आये तो भगवान मधुसूदन सरस्वती कहते हैं, ऐसे समय में केवल पांच मिनट हरिनाम का उच्चारण करना, प्रभु नाम।

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

कलियुग में नाम-स्मरण करने के साथ भगवान चैतन्य महाप्रभु ने दस नामापराध जोड़ दिए हैं। लेकिन तुलसी ने कहा, नाम-अपराध बताएंगे तो कोई डर जाएगा। इसलिए तुलसी ने ओर मुक्तता दे दी कि भाव से, कुभाव से, अनख से, आलस से, कैसे भी तुम नाम जपो; दसो दिशाओं में मंगल हो जाएगा। ऐसी नाम की महिमा बताई। तुलसी ने बहत्तर पंक्तियों में रामनाम की महिमा का गायन किया।।

मानस-महेश : ३

शिव आधिदैहिक भी है, आधिदैविक भी है और आध्यात्मिक भी है

'मानस-महेश', जिसकी सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा संवाद के रूप में इस कथा में हम कर रहे हैं। महेश का अर्थ है महान ईश्वर। ईश्वर महान ही है। ईश्वर के लिए 'महा' विशेषण की कोई जरूरत नहीं। फिर भी भक्तहृदय का भाव उसको कोई न कोई विशेष शब्द से अलंकृत कर देते हैं। तो महेश का अर्थ महान ईश्वर। और उसीका ही पर्याय शब्द थोड़ा माना जाएगा, वो शब्द है महादेव। यद्यपि मैं इसलिए कुछ कह रहा हूं कि देव और ईश में फ़र्क है। ईश का मतलब है आखिरी सत्ता। देव का मतलब है एक देव योनि, जैसे हम कहते हैं कि तैंतीस कोटि देवताये हैं। उनमें जो महान है वो भगवान शिव है। और वो महान ईश्वर जो है वो महेश है। उसी महेश और महादेव की धारा में तीन ओर शब्द आये। खास करके 'मानस' में वो है शंकर, शिव और शम्भु। ये तीन धाराएं है। आप प्रसन्न चित्त से श्रवण करें। भगवान शिव के साथ तीन बातें बहुत अनिवार्य रूपेण संलग्न है। शिव ये विश्व का सबसे महान ट्राय एंगल-त्रिकोण है। शिव और ये महादेव और महेश जो परम सत्ता का परिचय कराता है उसकी सबसे पहले तीन धाराएं हैं- शम्भु, शिव, शंकर। कभी गोस्वामीजी उसको शंकर कहकर पुकारते हैं।

मूलतः विशेषणमुक्त 'ईश' शब्द है लेकिन भक्तों के भाव ने उसको 'महेश' कहा। इसकी तीन धाराएं। तीन वस्तु शिव से अनिवार्य रूपेण संलग्न है। तलगाजरडी आंखों को दिखता है कि शिव आधिदैहिक भी है। महेश आधिदैविक भी है और आध्यात्मिक भी है। शिव यानी महादेव यानी महेश आधिदैहिक है। यद्यपि शिव निराकार है, उसकी कोई काया नहीं। बौद्ध धर्म में बताया है, इन्सान की तीन प्रकार की काया होती है। बड़ी प्यारी बात तथागत ने कही। प्रत्येक जीव की तीन प्रकार की काया। काया माने शरीर। तीन प्रकार के शरीर। जैसे वेदांत में स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, आत्म लिंगादि शब्द प्रयोजित किये गए हैं। लेकिन बुद्ध अपनी धारा में बोलते हैं। वो कहते हैं, व्यक्ति की एक काया का नाम है कामकाया। जो व्यक्ति को विहार में प्रवेश कराती है, विलास में लिए चलती है। 'करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा।' वो शंकर की कामकाया है। याद रखें, हमारे पास केवल कामकाया है। दैहिक विषय, विहार, व्यवहार, विलास। जो हमारे देह और देह आश्रित इन्द्रियों से होती रहती है। भगवान शिव का एक देहरूप है, जो तथागत बुद्ध की भाषा में कहूं तो कामकाया। शिव की मूर्ति भी हमने घड़ी है। ये उसका दैहिक रूप है। जैसे गोस्वामीजी एक मूर्ति निर्माण करते हैं 'मानस' में। यद्यपि वो निराकार है। 'नमामीशमीशान निर्वाणरूपं।' बहुत प्यारा शब्द प्रयोग भुशुंडि के गुरु करते हैं। शिव का रूप कैसा है? शिव निर्वाणरूप है। मोक्ष से भी बहुत प्यारा शब्द है 'निर्वाण।' शिव का कोई रूप नहीं। है तो निर्वाणरूप। लेकिन तुलसी ने 'बालकांड' में महादेव की एक काया का सृजन किया। सिर पर जटा है; यज्ञोपवित धारण की है; गंगाधारा बह रही है। त्रिशूल-डमरू परिधान किये हैं। मृगछाल लगी हुई है। भस्म लेपन किया आदि-आदि।

तो तीन प्रकार की काया होती है। कामकाया; कई लोग कामकाया में ही सौ साल पूरा कर देते हैं! केवल दैहिक। बुद्ध कहते हैं, दूसरी काया का नाम है धर्मकाया। देह मिला है। विहार करते हैं। मैं भी कहता हूं, एन्जोय करो। मर्यादा भंग न करो। सत्संग से प्राप्त विवेक को बरकरार रखकर ये दुनिया एन्जोय करने जैसी है। मेरी व्यासपीठ के पास मुक्ति की व्यवस्था नहीं है। मस्ती लूट सकते हैं आप। कल भी एक संपादक भाई हमारे पास बैठे थे एक अख़बार के वो पूछ रहे थे कि बापू, ये दुनिया की युवानी और ये सब उसके बारे में उसने कहा। मैंने कहा कि मैंने आज तक मेरी कथा में कभी किसी को नहीं कहा कि तुम ये व्यसन छोड़ो। विवेक से कहता हूं कि कम करो। छूट जाये तो बहुत अच्छा। बाकी मैं किसी को नहीं कहता कि तुम न पीने की चीज छोड़ो। छूट जाये तो अच्छी है। मैं तो इतना ही कहता हूं कि तुम जो पीयो, पीयो। लेकिन

एक बार मेरे पास आकर मेरी मय भी पीयो। मेरी एक अपनी शराब है। मेरी एक अपनी मदिरा है। मेरी एक अपनी सुरा है। जो देवता भी पीने के लिए लालायित रहते हैं। जो देवता के नसीब में नहीं है। इसलिए देवतागण आये थे शुकदेव के पास, परीक्षित के पास कि ये कथामृत हमें दे दो और स्वर्ग का अमृत हम तुम्हें दे दे। सात दिन के बाद अमर हो, क्या भरोसा? पहले दो घूंट पी ले और अमर हो जा।

एक बहुत प्यारा प्रश्न है, 'बापू, कपट और दम्भ में अंतर क्या है?' मेरा कोई पुराना श्रोता है। वो कहता है कि 'मानस' में तो लिखा है-

जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया।
तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया।।

बिलकुल सरल, बिलकुल स्वाभाविक एक अर्थ बता दो ना! कभी नहीं पूछेंगे!' बोल रहा है कि कपट और दम्भ का अर्थ क्या है? हममें जो कमजोरियां है, हममें जो बुराईयां हैं, जानते हुए भी उसको हम छिपाते हैं उसी का नाम कपट। अपनी कमजोरी और अपनी बुराईयों को बुद्धिपूर्वक छिपाने की चेष्टा उसी को व्यासपीठ कपट कहेगी। और दम्भ; अपने में अच्छाइयां नहीं है लेकिन इसी अच्छाइयों को दुनिया के सामने दिखाना ये दम्भ है। एक को छिपाना कपट; एक को दिखाना दम्भ। कमजोरी को छिपाना कपट। अच्छाइयां नहीं होते हुए भी दुनिया के सामने प्रदर्शित करने की परम चेष्टा दम्भ है। और मैं ये भी कह सकता हूं कि कपट अच्छी वस्तु तो नहीं है, लेकिन कपट से भी ज्यादा भयंकर है वो दम्भ है। हम वैरागी नहीं है लेकिन हम वैरागी बुलवाते हैं! हम चिंतक नहीं है लेकिन हमें कोई चिंतक कहे, गुदगुदी होती है! हम विचारक नहीं है लेकिन हमें कोई कहे, आप बड़े विचारक है, अच्छा लगता है! आप दार्शनिक लगते हो, बड़ा प्यारा लगता है! तो दम्भ, जो है नहीं वो दिखाना है। कपट, जो है लेकिन छिपाना है।

तो मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूं कि मैं किसी को नहीं कहता कि तू शराब छोड़। मैं मेरी जो सुधा है वो पिलाने की कोशिश करता हूं कि आप मेरी एक बार चख लो, वो अपने आप छूट जाएगी। कहने से किसी की छूटी नहीं। और मैं प्रसन्न हूं कि मेरी ये रामकथारूपी सुधा को पीनेवाले कई लोगों की छूट गई। क्योंकि उसको शराब फीकी लगी। छुड़वाने से कौन छोड़ता है? अच्छा पिलाओ। युवानी क्यों आ रही है कथा में? उसको निर्भार किया जाये; उसको प्यार दिया जाये। उसको प्रेम से पुकारो। मैं आपको 'यार' क्यों कहता हूं? मैं इसलिए 'यार' कहता हूं कि आप जितना हो सके मेरे निकट रहे। मैं ये नहीं चाहता कि आप मेरे से दूर रहो। जितना हो सके आप निकट रहो। मेरे निकट मीन्स व्यासपीठ के निकट, जिसके निकट मैं भी हूं; आप भी हो। हम सब निकट हैं। ये नैकट्य बुराइयां छुड़वाएगी।

कल एक युवान ने मुझे पूछा, बापू, आपने पहले दिन कह दिया, 'आई लव यू' मत बोलो। बापू, हद कर दी आपने! जरा संशोधन करो। हमको आदत-सी हो गई है।' तो संशोधन कर दूं। 'आई' निकाल दो, खाली 'लव यू' बोलो। क्योंकि प्रेम में 'तू' ही होता है, 'मैं' नहीं होता। तो संशोधन चाहते हो तो इतना रखो 'आई' निकाल दो, क्योंकि 'आई' कायम केपिटल होता है ना! तो इतना रखो, 'लव यू।' उसी व्यक्ति को कोई दूसरा भी कहे तो बुरा मत मानना। 'आई' हटा दो तो किसी को तकलीफ़ नहीं होती। एक फूल को हर कोई प्यार कर लेता है। किसी को तकलीफ़ नहीं होती। एक ओर संशोधन भी कह दूं। 'आई' रखना ही है तो चलो, ऐसा करो, 'आई लव यू' कहना बंद करो। हे सद्गुरु, 'आई लिव यू।' मैं तुझे जीयूं। 'आई ईट यू', मैं तुझे खाऊं। 'आई ड्रिन्क यू।' 'आई लिव यू' रखो। 'आई' सार्थक हो जाएगा, जोगमाया बन जाएगा। हमारे चारणी साहित्य में कई प्रांतों में माँ को 'आई' कहते हैं। यदि प्रेम है तो बोलने की क्या जरूरत है कि 'आई लव यू।' प्रेम है तो है। 'अगर ये रस्मों रिवाजों से बगावत है तो है।' बोलने की क्या जरूरत है? प्रेम है। रूह से महसूस करो। बोलना है तो 'आई लिव यू' हे बुद्धपुरुष, मैं तुम्हें जीयूं, मेरा खुराक तू। मेरा अन्न-जल तू। मेरा नसीब तू। मेरा सब कुछ तू। बट आई नेवर लीव यू। लेकिन मैं तुम्हें कभी छोडूं ना! ये भी एक मंत्र हो जाये, मैं तुम्हे न छोडूं, तू छोड़ दे। तुलसी लिखते हैं 'विनय' में, 'जो तुम त्यागो राम हौं तो नहिं त्यागो। परिहरि पाय काहि अनुरागों।' मैं तुम्हें नहीं छोडूंगा, तू छोड़ दे, तू छोड़ दे। फिल्म की पंक्ति, बड़ी प्यारी पंक्ति माने बहुत बड़ी प्यारी-

तुम अगर भूल भी जाओ तो ये हक़ है तुझको,
मेरी बात ओर है मैंने तो मुहब्बत की है।

भक्त क्या कहता है? तू तो सर्व समर्थ है दाता, तू तो छोड़ भी दे। तेरा अधिकार है। तुझे हम प्रभु कहते हैं और प्रभु का अर्थ है समर्थ। 'कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम्' समर्थ है। 'विनय' में मेरे पूज्यपाद गोस्वामीजी कहते हैं, राघव, तुम यदि त्याग दो तो दो लेकिन मैं नहीं त्यागूं। क्योंकि मुझे ये पता है कि तेरे चरणों को छोड़कर मैं किससे प्यार करूं? किसी के मुख से प्यार करना उसमें माया का खतरा है लेकिन किसी के चरणों में प्यार करना वो विशुद्ध भक्ति है। मुख के दर्शन में माया की सम्भावना है, मोह की सम्भावना है। गुजराती में तो लिखा है-

मुखड़ानी माया लागी रे मोहन प्यारा।
मुखडुं में जोयुं तारुं, जग आखुं लाग्युं खारुं।

चेहरा का दर्शन बड़ी प्यारी वस्तु है लेकिन उसमें माया का खतरा है। इसलिए भगत जब भी चाहता है तो चरण चाहता है। उसको चरण चाहिए। वो विशुद्ध भक्ति का प्रतीक है। तो हे राघव, तुम्हारे चरणों को छोड़कर मैं किससे प्यार करूं? राघव, आपके चरणों को छोडूं तो मैं किससे मोहब्बत करूं? मीरां भी यही टोन में एक पद गाती है। प्रसिद्ध पद मीरां का-

जो तुम तोड़ो पिया, मैं नहीं तोडूं रे।
तोरी प्रीत तोड़ी कृष्ण, कौन संग जोडूं।

'मैं आपको कभी नहीं छोडूं', उसमें 'मैं' सार्थक हो जाएगा। 'आई लव यू' में 'मैं' प्रेम को प्रदूषित कर सकता है। लेकिन मैं आपको कभी छोडूंगा नहीं, ये जो शरणागति की बात है। जैसे हमारी माँ पार्वती सप्तऋषियों को कहती है, मेरे गुरु के वचन मैं नहीं त्याग सकती। स्वयं शिव मुझे मना करे कि मुझे ब्याहने की ज़िद छोड़ तो भी मैं नहीं मानूं। मैं तो शिव के लिए समर्पित हूं, मेरे गुरु के वचन के लिए, ये शरणागति है। तो कहना सीखो युवा भाई-बहन, 'आई लिव यू', हे बुद्धपुरुष, मैं तुम्हें जीयूं, मैं तुम्हे ओढ़ूं। मैं तुम्हें पहनूं। जैसे हिंदी भाषा के एक बहुत बड़ा शायर अब नहीं रहा, जल्दी चला गया, दुष्यंतकुमार; उसने कहा-

मैं जिसे ओढ़ता, बिछाता हूं।
वो गज़ल आपको सुनाता हूं।

मैं गज़ल ओढ़कर सोता हूं। मैं गज़ल बिछाता हूं। मैं गज़ल पीता हूं। मैं गज़ल खाता हूं। मैं गज़ल जी रहा हूं। तो यदि

आप संशोधन चाहते हैं तो कुछ संशोधन हैं, ये भी समझ लें। और फिर भी मैं तो अपने विचार पेश कर रहा हूं।

तो हमारे जीवन में कुछ कायाएं है, इसमें बुद्ध कहते हैं, कामकाया है। जो विलास कराती है, विस्तार कराती है। मैं बुरा नहीं कहता हूं। एन्जोय करो। 'मानस' तुमने सुना है तो विवेक न छोड़ो। बाकी आप मौज करो। मैंने कभी नहीं कहा कि तुम ये छोड़ो, ये छोड़ो। बस, मेरे पास आये हो तो थोड़ी-सी पी लो। थोड़ी चख लो। थोड़ी मेरी भी पी लो। मेरे दादा ने घोंट-घोंट कर तैयार की, वो मैं आप सबको पिला रहा हूं। थोड़ी पीयो। जन्म-जन्म का दूसरा नशा जो नाश करता है, निकल जाएगा और अमरत्व देनेवाला एक बहुत प्यार-मस्तीभरा आनंद जीवन में आ जाएगा। तो मैं युवानों को कहता हूं, एक ये भाव मैं व्यक्त करता रहता हूं। मैं देश के युवान को यही कहता रहतां हूं कि आप एक साल में मुझे नौ दिन दो, केवल नौ दिन। मेरी व्यासपीठ आपको नवजीवन देगी।

तो तथागत बुद्ध के सूत्रों में आया, एक कामकाया है। जरूरी है। कोई बुरी बात नहीं। तुलसीदास ने इसकी बहुत सराहना की है।

बड़े भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।

मनुष्य शरीर ये परम सौभाग्य है। आनंद करो। विवेक, मर्यादा, खानदानी, शील, भारत के ऋषिमुनि इन सबका स्मरण रखो। बुद्धपुरुषों का स्मरण रखो। स्वर्ग में अमृत है, ये तो एक सन्मान मिल गया। स्वर्ग में कहां से अमृत? अमृत यदि है तो पृथ्वी पर है। अमृत तो कथा का यहां है पृथ्वी पर। न स्वर्ग में है, न कहीं है। मेरे तुलसी कभी रेशनालिस्ट लगता है; ऊपर से आस्तिक लगता है, अंदर से भयंकर क्रांतिकारी आदमी है। उसने कहा, अमृत के बारे में सुना है, किसी ने एक घूंट भी नहीं पिलाई। कई लोग बातें करते हैं, पिलाते नहीं! गोस्वामीजी कहते हैं, अमृत मात्र धरती पर; धरती पर भी अमृत मात्र कथा। मुझे कई लोग कहते हैं, बापू, आप संकल्प कराओ न, हाथ ऊपर उठाकर के कि शराब छोड़ दो, सिगारेट छोड़ दो, ये छोड़ दो, फलां छोड़ दो। मैं छोड़ने को कहता हूं, जरूर कहता हूं, ईर्ष्या छोड़ दो। इतना मैं पक्का कहता हूं। मैं कहता हूं, द्वेष छोड़ दो, ये मैं जोर से, सालों से बोल रहा हूं। मैं कहता हूं, निंदा छोड़ दो। ये छोटी-सी तुमने पी ली है। हां, छोड़ना है तो द्वेष छोड़ें। क्यों करें द्वेष? ईर्ष्या छोड़ें, निंदा छोड़ें, आंखों में से आक्रोश कम करें। देह दिया, वो सबसे बड़ी कृपा परमात्मा की और इनमें भी परमात्मा ने कृपा की है, आंखें दी हैं। भगवान ने इस धरती पर हमें खड़ा किया है। ये ओर कृपा की है। चार पैर से दो पैर कर दिया हमें परमात्मा ने, अनंत कृपा है। तो व्यसन छूट जाएं, बुराइयां छूट जाएं, बहुत अच्छी है लेकिन मेरा मतलब ये नहीं है। तुम कथा पियो, अपने आप छूटेगा, स्वाभाविक।

दूसरा बुद्ध का वक्तव्य है धर्मकाया। कामकाया के अंदर धर्म भी होना चाहिए। और धर्म सत्य, प्रेम, करूणा बस। और तीसरा बुद्ध का वक्तव्य है उसको कहते हैं वो निर्वाणकाया, मोक्षरूप काया। तलगाजरडा को एक काया ओर एड करनी है जिसको मैं कहूंगा प्रेमकाया, प्रेमदेह। जैसे ईशु प्रेमदेह; चैतन्य प्रेमविग्रह, प्रेमकाया। मैं आपसे निवेदन कर रहा हूं, भगवान शिव का एक रूप है दैहिक। दैहिक काया, कामकाया उसमें वो विहार करते हैं। प्रमाण-

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा।
गनन्ह समेत बसहिं कैलासा।।

तो भगवान शंकर, तीन वस्तु उनके साथ अनिवार्य रूपेण संलग्न है, जो महेश है। महादेव और महेश करीब-करीब पर्याय। और इनकी तीन धारा शम्भू, शंकर, शिव दैहिक रूप के जिसको हम एक रूप बनाते हैं। हमारे जैसा विहार करता है, शादी करता है, नंदी पर बैठता है। सांसारिक खट-मीठी में उलझता है। सब दैहिक लीला शिव की, महेश की एक अर्थ में। दूसरा रूप है महेश का वो है आधिदैविक, वो देवताओं के नायक हैं महादेव। ये दैविक रूप है उसका। महादेव सभी देवताओं से ऊपर है। तो व्यासपीठ को लगता है, ये महेश का दैविक रूप है। और तीसरा रूप है महेश का और वो है आध्यात्मिक।

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं।
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।।

ये आध्यात्मिक रूप आत्मा। संसार की उपाधि में शिव जीते हैं वो है शिव का दैहिक रूप। संसार में रहते हुए भी समाधि में जीते हैं वो शिव का है आध्यात्मिक रूप। 'रामचरितमानस' में 'समाधि' शब्द नौ बार आया है। इसमें पांच बार समाधि भगवान शिव की ओर इंगित है। दो

बार की समाधि एक नारद के पक्ष में गई है। मैंने अभी सेंजल में भी कहा था, उसमें मैंने योग-सूत्र भी रखा कि एक निर्विकल्प समाधि भी है कबीर के मत की।

संकर सहज सरूप सम्हारा।
लागी समाधि अखंड अपारा।।

सहज समाधि का भी उल्लेख है। सभी समाधियों का उल्लेख 'मानस' में है। लेकिन एक समाधि बड़ी प्यारी है।

सिथिल समाज सनेह समाधि
देखि दसा चुप सारद साधी।।

गोस्वामीजी एक समाधि का अवतरण करते हैं प्रेम-समाधि, स्नेह-समाधि। समाधि दो प्रकार से टूटती है 'मानस' में। शिव की समाधि जो है ये कामदेव के बाण से टूटी। क्षोभ हुआ, टूटी मीन्स क्षोभ। और यहां भरत आदि समाज जब प्रभु के भाव में डूबा है, स्नेह समाधि की एक अवस्था में सब डूब गए, उसी अवस्था को देखकर शारद चुप हो गए। शारदा मुख है, प्रवक्ता है, गानेवाली है। कल मैंने कहा कि बहुत गाती है माँ सरस्वती। लेकिन उस समय उसने चुपकी साधी कि मेरे बोलने से कहीं प्रेमसमाधि टूट न जाये। समाधि या तो काम के बाण से टूटती है या तो समाधि आम की वाणी से टूटती है। जयजयकार लोग बहुत करे, आम लोगों की वाणी शुरू हो जाती है, बड़े-बड़े लोगों की समाधि का विक्षेप हो जाता है कि हम ऐसे हैं, हम ऐसे हैं! तो वहां शारदाजी चुप हो गई कि इसमें बोलना खतरा है, इसमें बोलना ठीक नहीं। नौ बार समाधि का प्रयोग मेरे प्रभु करते हैं। करीब-करीब पांच बार समाधि के केन्द्र में महादेव हैं। तो ये उनका आध्यात्मिक रूप है। ब्याह करना ये आधिदैहिक; देवों के शिरोमणि बनकर जब देवता फंस जाए तब उसको किसी न किसी रूप में उपयोगी होना ये उसका आधिदैविक रूप है। और उसका आध्यात्मिक परब्रह्म तत्त्व। 'प्रभुं प्राणनाथं विभुं विश्वनाथ।'

तो भगवान शिव का आधिदैहिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक रूप है। तीन वस्तु जुड़ी है महेश के साथ। शंकर, शम्भु, भगवान शिव का प्रधान निवासस्थान तीन हैं। यद्यपि शिवतत्त्व व्यापक है। कोई जगह खाली नहीं जहां शिव न हो, ब्रह्म न हो। 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म।' लेकिन प्रधान तीन स्थान। सबसे पहला और नित्य निवास शिव का कैलास है यानी हिमालय कह दो। कैलास ये उसका मूल घराना है। दूसरा है विश्वनाथ काशी। और मुझे कहने में आनंद आता है, शिव तो हर जगह है लेकिन तीसरा स्थान है सोमनाथ। यद्यपि उसको 'सौराष्ट्रे सोमनाथं च', पहला स्थान दिया गया है। लेकिन तत्त्वतः महादेव का नित्य निवास कैलास। उसके बाद वेकेशन आदि में आना है थोड़ा मौसम बदले ऐसे शंकरजी थोड़े आ जाते हैं तो विश्वनाथ आते हैं, काशी में आ जाते हैं। फिर काशी में भी उसको चारों ओर गंदगी दिखती है ना कि मैं यहां आता हूं लेकिन चारों ओर गंदगी..गंदगी..गंदगी..! छोटी-छोटी गलियां और ये गंदगी, सड़ रहे हैं फूल-पत्ते, ये सब..! फिर उसको लगता है कि अब कोई शांति से सांस लूं, फिर वो आता है गुजरात, वो सौराष्ट्र आता है और विशाल पटांगण में सोमनाथ बनकर बिराजमान है साहब! न कोई दुर्गन्ध, न कोई अस्वछता और महादेव एक ओर सिंधु गर्जना कर रहा है और साहब, वहां सोमनाथ में आकर बैठ जाता है। आओ, एक-दो 'रुद्राष्टक' के श्लोक से हम सोमनाथ का अभिषेक कर लें। शिवरात्रि की ओर जा रहे हैं हम। ये यात्रा शिवरात्रि की यात्रा है। गिरनार छोड़कर मैं ग्वालियर आ गया यार! वरना में गिरनार नहीं छोड़ता, करीब-करीब नहीं छोड़ता। लेकिन ग्वालियर आया।

निराकारमोङ्कारमूलं तुरीयं।
गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं।
गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।
नमामीशीमीशान निर्वाणरूपं।
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं।।

तीन-तीन वस्तु जुड़ी है मेरे महादेव से- कैलास, विश्वनाथ, सोमनाथ। शिव में तीन वस्तु है- गायन, वादन, नर्तन। महेश गायन करते हैं। बहुत अच्छा गाते हैं महादेव। और अच्छा कहना भी उसका अपमान है। महादेव गायेगा तो बात खत्म! प्रमाण, 'गावत संतत संभु भवानी।' शिव है गायक। शिव है नर्तक। वादन, गायन। वो तीनों का समुच्चय रूप है महेश। तीनों करता है ये आदमी। डमरू बजाता है। दुनियाभर की वाणी का व्याकरण निर्मित करता है। निर्माण करनेवाला महादेव, बाप बनकर जगत का परिपालन करनेवाला महादेव और तांडव करके हिलानेवाला मानो संहार कर देगा, खत्म कर देगा ये

आदमी! तीनों करता है शिव-महेश। महेश के साथ तीन मातृशक्ति जुड़ी है। एक उमा, जो सदा-सदा उसकी अर्धांगिनी, जो एक है। दूसरी गंगा। और तीसरी मुख से निकली 'मानस' मैया, 'रामचरितमानस' की धारा। ये तीन मातृशक्ति महादेव से जुड़ी हुई है, महेश से जुड़ी हुई है। शिव में तीनों गुण है। यद्यपि तो भी गुणातीत है। एक मात्र महेश है जिसकी स्तुति ऋग्वेद ने भी की, यजुर्वेद ने भी की, सामवेद ने भी की और अथर्ववेद ने भी की। और जब वेद गा लेता है कि तेरे ऊपर कोई नहीं, तब तो बात खत्म हो गई यार! रजोगुण से जगत निर्मित करता है महादेव। क्योंकि रजोगुण के बिना आप सृजन नहीं कर पाते। रजोगुण प्रधान गुण है सृजन के लिए। सत्त्वगुण के बिना पालन नहीं कर सकते। पालन करनेवाला सतोगुणी होना चाहिए। इसलिए हमारे यहां पालनकर्ता के रूप में विष्णु का नाम आया। विष्णु सत्त्वगुण प्रधान देव माना गया। और तमोगुण के बिना संहार नहीं कर सकते। इसलिए शिव को वैश्विक अहंकार का दर्जा दिया है। ये तीनों गुण का आश्रय लेकर सर्जन, मार्जन या तो ठीक करना और विसर्जन, तीनों क्रिया जो महादेव करते हैं। ये तीन भी जुड़े हुए हैं महेश के साथ और फिर भी तीनों से पर।

अगुन अमान मातु पितु हीना।
उदासीन सब संसय छीना।।

निर्गुण है, गुणातीत है महादेव। ये भी तीन उसके साथ जुड़ा है। शिव त्रिलोचन है, त्रिनेत्र है। तीन दृष्टि रखता है। वो भी तीन है। भगवान शिव 'त्रयःशूल निर्मूलनं शूलपाणि', त्रिशूल धारण करता है। वो भी तीन है। तीन वस्तु संलग्न है शिव से। एकमात्र महेश है जो स्वर्ग में भी दिखता है; जो मृत्युलोक में तो कायम निवास करता है और पाताल में भी दिखता है। तीनों लोक में उसका वास है। और मेरे गोस्वामीजी कहते हैं, एकमात्र शिव है जो त्रिभुवन गुरु है; तीनों भुवन के गुरु है। एक प्रदेश के नहीं, तीनों भुवन के वो गुरु हैं। सत्य, प्रेम और करुणा की मूर्ति है महादेव। टैगोर की बोली में कहो तो सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् है महादेव। पशुयोनि, भूतयोनि और मानवयोनि तीनों शंकर के इर्द-गिर्द घूमते हैं। नंदी, पार्वती का वाहन शेर ये सब पशुयोनि में आता है। प्रेतयोनि में वीरभद्र गण, शृंगी-भृंगी, ये भूत-प्रेत जो भी जमात ये सब आते हैं। और मानवयोनि में उपमन्यु, पुष्पदंत आदि-आदि ये सब आकर के शिवलिंग को बाहों में लेकर नाचते हैं। भगवान शिव सबका है। सर्वलोक महेश्व है भगवान शिव।

शिव के साथ तीन रात्रि जुड़ी हैं, यस। तीन रात; ये तीन रात्रि का नाम है- कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि। मोहरात्रि कहते हैं जन्माष्टमी को। याद रखना, मोहरात्रि ये जन्माष्टमी है। त्रिभुवन को विमोहित करनेवाला परात्पर ब्रह्म कृष्ण का जिस रात्रि में प्रागट्य हुआ उसको मोहरात्रि कहते हैं। अथवा तो जेल में भी सब पड़े थे, ये जो चौकीदार थे सब मोहनिद्रा में पड़े थे और ये प्रकट होनेवाला ये नन्दनंदन कब निकल आया और क्या हो गया किसी को पता नहीं चला! इसको कहते हैं मोहरात्रि। उसका एकमात्र साक्षी था तो महादेव; उसको पता था कि मैं भी जिसका स्मरण करता हूं वो परमात्मा कृष्णरूप में प्रकट होनेवाले हैं। पूरा जगत सोया हुआ है। याद रखना, जब कृष्ण का प्रागट्य हुआ तब सब सोये हैं क्योंकि मोह सबको सुला देता है। माँ देवकी, पिता वसुदेव, उसको पता लगा कि प्रगट हुआ है, बाकी सोये हैं। लेकिन मुझे कहने में अति प्रसन्नता है कि उस समय कोई जागता था तो केवल कैलासवाला जागता था। क्योंकि उसको पता है कि आज कौन आनेवाला है। यहां आया तो यशोदा भी सोई है, नन्द भी सोये हैं। ये तो ब्रह्म आया तो जागे। ब्रह्म के बिना तो सब भ्रम में मूर्छित हैं। मोहरात्रि जन्माष्टमी है। अद्‌भुत बात है।

महारात्रि को ही शिवरात्रि कहते हैं। इसलिए हम कहते हैं महाशिवरात्रि। एक वस्तु याद रखें युवान भाई-बहन कि प्रत्येक मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी शिवरात्रि है। प्रत्येक मास की, कृष्ण पक्ष की होनी चाहिए, चतुर्दशी वो शिवरात्रि। और तीसरी रात्रि कालरात्रि। 'कालराति निसचर कुल केरी।' तुलसी उसका उल्लेख करते हैं वो है अश्विन मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, जिसको काल चौदस, शुद्ध गुजराती भाषा में कहते हैं, काली चौदस। उसको कालरात्रि कहते हैं। ये तीनों का जो प्रधान जागृत तत्त्व है वो भगवान महेश है, शंकर है। तो ऐसे शिव को हम पुकार रहे हैं।

कल हमने मिलकर के रामकथा के क्रम में रामनाम की वंदना और उसकी महिमा का गायन किया। उसके बाद गोस्वामीजी 'रामचरितमानस' की पूरी प्रवाही परंपरा की चर्चा करते हैं। जैसे जो पंक्ति आपके सामने रखी, 'रचि महेस निज मानस राखा।' भगवान महेश ने 'रामचरितमानस' की रचना करी, अपने मानस में रखा। एक सुन्दर रूपक बनाया तुलसी ने। जैसे हिमालय में मानसरोवर है वैसे ये भी एक मानस सर है। कोई भी सरोवर के करीब-करीब चार घाट होते हैं। वहां यद्यपि मानसरोवर में हिमालय में कोई घाट नहीं है। हिंदुस्तान के पास होता तो मैं भी भारत सरकार को प्रार्थना करता कि घाट बनाओ। लेकिन 'लम्हों ने खता की थी, सदियों ने सजा पाई।' कुछ निर्णय चंद लम्हों में लिए गए, उसकी सजा हिंदुस्तान सदियों से भोग रहा है! जो हमारा था कैलास, आज दूसरों के हाथों में हैं! चंद घड़ियों की चूक शताब्दियों तक देश को भोगनी पड़ती है!

उस राज़ को क्या जाने साहिल के तमाशाई।
हमने डूब के जाना है सागर तेरी गहराई।

हमने तो उसमें डूबकर गहराई जानी है। शून्य पालनपुरी, हमारे यहां गुजराती में एक बड़े एक लेवल के शायर हुए।

अमे तो समंदर उलेच्यो छे प्यारा।
तमे फ़क्त छबछबियां कीधां किनारे।
मळी छे अमोने जगा मोतीओमां,
तमोने फ़क्त बुद्‌बुदा ओळखे छे।

●

छुं शून्य ए न भूल ओ अस्तित्वना खुदा,
तुं तो हशे के केम पण हुं तो जरूर छुं।

तू होगा कि नहीं, खबर नहीं, लेकिन मैं तो हूं। खुदा है कि नहीं खबर नहीं, बंदा है। ये दादागीरी जो शायर की है! तो कहने का मतलब हम भारतीय कह सकते हैं कि मानसरोवर के घाट बनायें जाए। फिर एक-एक घाट का नाम दिया जाये। ये कैलास घाट, महादेव और पार्वती। दूसरा घाट याज्ञवल्क्य और भरद्वाज। तीसरा घाट बाबा भुशुंडि और खगराज गरुड। और चौथा घाट बनता है गोस्वामी तुलसी और साधु-संत। तो चार घाट बनाये। ज्ञानघाट, कर्मघाट, उपासना घाट और शरणागतिघाट। तुलसीजी लिखते हैं, भगवान शंकर ने कागभुशुंडि को ये कथा दी। कागभुशुंडि ने गरुड़ को सुनाई, प्रवाही परंपरा चली। फिर ये कथा याज्ञवल्क्य को मिली तीर्थराज प्रयाग में, बिलकुल धरा पर आई। और फिर याज्ञवल्क्य महाराज ने भरद्वाजजी को ये कथा सुनाई और फिर तुलसी कहे, मुझे ये कथा वराह क्षेत्र में, सुकर क्षेत्र में मेरे गुरु ने सुनाई। मेरा बचपना था। इसी कारण मैं समझ नहीं पाया। लेकिन गुरु कृपालु है। गुरु ने बार-बार कथा सुनाई तब जाके बुद्धि के अनुसार मुझे ये कथा समझ में उतरी और जैसे ही ये कथा मुझमें उतरी तो मैंने निर्णय कर लिया, उसको भाषाबद्ध कर दूं। क्यों? मेरे मन के प्रबोध के लिए मैं उसको भाषा में उतारूं। तो गोस्वामीजी कहते हैं, मैंने भाषाबद्ध की। त्रेतायुग में भगवान प्रकट हुए अवध धाम में, तब जो जोग, लगन, ग्रह, वार, तिथि अनुकूल हुई थी, ऐसा ही योग, ऐसी ही युति १६३१ की साल में रामनवमी के दिन हुई। उस समय रामकथा का जन्म हुआ।

तुलसी ने कथा का आरम्भ किया शरणागति के घाट से। तीरथराज प्रयाग में एक बार कुम्भ मेला हुआ। इसमें याज्ञवल्क्य महाराज भरद्वाज के आश्रम में ठहरे थे। एक महीने का कल्पवास पूरा हुआ। परम विवेकी याज्ञवल्क्य ने विदा मांगी तब भरद्वाजजी ने चरण पकड़ लिए, मेरे मन में एक जिज्ञासा है, एक संशय है। महाराज, रामनाम का इतना बड़ा प्रभाव है, तो ये रामतत्त्व क्या है? परम विवेकी होने के नाते याज्ञवल्क्यजी मुस्कुराकर के बोले, महाराज, आपको राम की प्रभुता का पता है। लेकिन मूढ़ की तरह प्रश्न पूछकर मेरे मुख से आप राम की गूढ़ कथा सुनना चाहते हैं। मैं जरूर कथा सुनाऊं। और याज्ञवल्क्यजी महाराज को पूछा था रामकथा के बारे में; कथा का आरम्भ किया शिवकथा से।

शिव के साथ तीन रात्रि जुड़ी हैं, यस। ये तीन रात्रि का नाम है- कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि। मोहरात्रि कहते हैं जन्माष्टमी को। याद रखना, मोहरात्रि ये जन्माष्टमी है। त्रिभुवन को विमोहित करनेवाला परात्पर ब्रह्म कृष्ण का जिस रात्रि में प्रागट्य हुआ उसको मोहरात्रि कहते हैं। महारात्रि को ही शिवरात्रि कहते हैं। इसलिए हम कहते हैं महाशिवरात्रि। और तीसरी रात्रि कालरात्रि। अश्विन मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी, जिसको काल चौदस, शुद्ध गुजराती भाषा में कहते हैं, काली चौदस। उसको कालरात्रि कहते हैं। ये तीनों का जो प्रधान जागृत तत्त्व है वो भगवान महेश है, शंकर है।

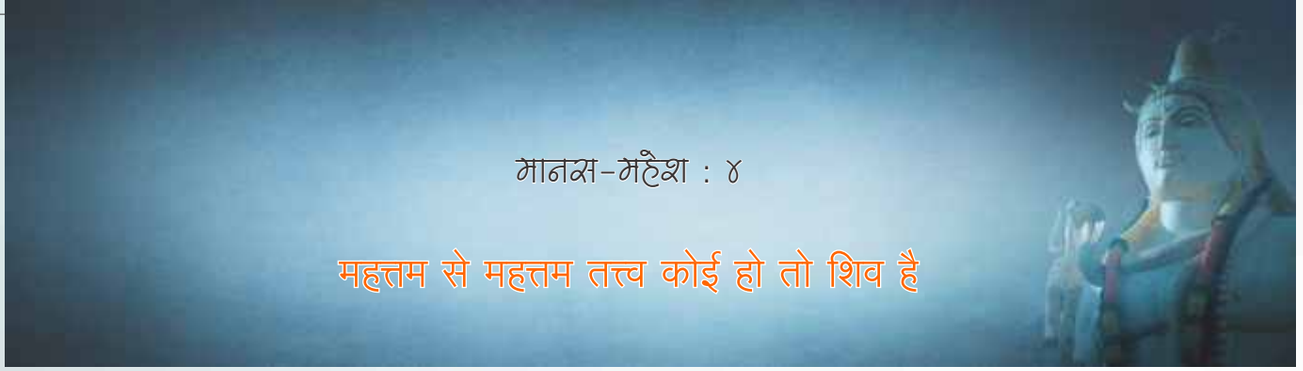

मानस-महेश : ४

महत्तम से महत्तम तत्त्व कोई हो तो शिव है

'मानस-महेश', जो इस नौ दिवसीय रामकथा का केन्द्रबिंदु है, जिसको केन्द्र में रखते हुए हम संवादी सूर में महेश-महिमा का गायन कर रहे हैं। आजकी कथा का आरंभ एक मंत्र से किया जाये। व्यासपीठ चाहेगी कि मंत्र के एक-एक भाग को उच्चारित करके सुनाया जाये और आप प्रसन्न चित्त से सुनकर आपका भी उसमें प्रतिसाद प्राप्त हो।

महत्तमतव: मकारोत उच्यते पुकारो हे आत्मिका
शरणोपन्ना त्र्यंअक्षर: महेश इति उच्यते।।

'महेश' शब्दब्रह्म की भाष्यकार इस रूप में व्याख्या कर रहे हैं। जैसे कल हमारी चर्चा चल रही कि महेश उसकी तीन धाराएं-शंभु, शंकर, शिव। यद्यपि रुद्र भी कहते हैं, हर भी कहते हैं। बहुत से नाम हैं। यहां 'महेश' शब्दब्रह्म में तीन अक्षर हैं। संस्कृत वाङ्मयकार उसकी अपने ढंग से परिभाषा देते हैं। बड़ा बल मिलता है। तीन अक्षर से बना ये शब्दब्रह्म; मकार, हकार, शकार। इसमें जो पहला अक्षर 'म' है उसको भाष्यकार कहते हैं, ये महत्तम तत्त्व है। सिद्धांत बदले जा सकते हैं। देश, काल और व्यक्ति के सन्दर्भ में सिद्धांत पर संशोधन होना भी चाहिए। केवल तीन बात न बदली जाये कभी। और ये तीन सिद्धांत है भी नहीं और वो है मेरी व्यासपीठ के मुताबिक सत्य, प्रेम और करुणा। गांधी ने सत्य को सिद्धांत नहीं बनाया, अनुभूति बनाई। जिसस क्राइस्ट ने, चैतन्य महाप्रभु ने प्रेम को सिद्धांत नहीं बनाया, प्रेम को अनुभूति बनाई। पैगंबर मोहम्मदसाहब ने रहमत को, करुणा को सिद्धांत नहीं बनाया, अनुभूति बनाई।

तो सिद्धांत के रूप में भगवान महेश का मकार यहां नहीं है। प्रज्ञावान और बुद्धपरुषों की अनुभूति में महेश का मकार यहां उच्चारित हुआ है। ये महत्तम तत्त्व है। इससे ऊपर कोई तत्त्व नहीं। शिवतत्त्व सर्वोपरी है, यस। भगवान राम अवतार है। कृष्ण अवतार है। शिव अवतार नहीं है। शिव निर्गुण है, निराकार है। शिव शून्य है। शिव पूर्ण है। अवतार आता है तो अवतार जाता भी है। शिव एक ऐसा तत्त्व है; 'गीता'कार योगेश्वर कहते हैं कि एक ऐसी जगह है जहां पहुंचने के बाद लौटना असंभव है, 'यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।' शिव वो तत्त्व है। आदमी अनुभूति में कैलास चढ़ जाये तो उसके आगे कहां जाएगा? कोई जगह नहीं। कोई वजह भी नहीं। तो महत्तम से महत्तम तत्त्व कोई हो तो शिव है। मैं रामकथा का गायक हूं, राम की रोटी खा रहा हूं, अवश्य। राम मेरे लिए सब कुछ है। फिर भी मैं कहूंगा कि शिव ने राम की कथा गाई, लेकिन शिव की प्रतिष्ठा तो राम को ही करनी पड़ी, यस। कथा तो शिव ने गाई रामकथा, यस। जहां सेतुबंध निर्मित किया गया वहां भगवान को ये पुण्य मनोरथ प्रगट हुआ कि ये उत्तम धरणी है। स्थापना तो राम ही करते हैं। इसका मतलब ये है कि ये शिव महत्तम तत्त्व है। मैं इस कथा में महेश तत्त्व पर बोल रहा हूं। वरना तो जो दूल्हा होता है उसके ही गीत गाये जाते हैं! सीधी-सी बात है। व्यासपीठ ऐसा काम नहीं करती। व्यासपीठ का ये स्वभाव नहीं। व्यासपीठ का स्वभाव है जो है सो अनुभूति के साथ व्यक्त करना, बढ़ा-चढ़ा कर नहीं। न अधोभाव, न अहोभाव। केवल साक्षीभाव से मूल्यांकन करना।

तो रामतत्त्व समझाने के लिए राम की ही चर्चा शुरू करनी चाहिए। लेकिन महत्तम तत्त्व शिव है। इसलिए याज्ञवल्क्य ने राम की कथा पहले न सुनाई, शिवकथा पहले सुनाई। शिवतत्त्व पर तो मेरी व्यासपीठ कई बार मुखर हो चुकी है। ये तो शिवरात्रि के पावन दिन की ओर हम जा रहे हैं, इसलिए सोचा गया कि महेश की महिमा का गायन किया जाये। तो इस संसार में महत्तम तत्त्व यदि कोई है तो भाष्यकार कहता है, वो मकार है। 'महेश', ये तीन अक्षरब्रह्म का एक शब्दब्रह्म बना। इनमें मकार है, शास्त्रकार कहते हैं वो महत्तम तत्त्व है। फिर 'हे', ये सवा अक्षर है। 'हे' का मतलब कहते हैं, 'हे' ये पुकार की आत्मा है। आदमी अहोभाव में या तो किसी भी भाव में अचानक 'हे' शब्द बोलता है। हे हरि! हे गोविन्द! हे गोपाल! अथवा तो या अल्लाह! फ़र्क क्या पड़ता है?

काबे से बुत्कदे से कभी बज़्मे जाम से,
आवाज़ दे रहा हूं तुम्हें हर मक़ाम से।

मेरे गोस्वामीजी 'विनयपत्रिका' में जब पुकारात्मिक की बात करते हैं, तो पुकार की आत्मा है 'हे।' 'हे' के बिना पुकार निष्प्राण हैं। आप 'अल्लाह' बोलो, महिमावंत है। लेकिन 'या अल्लाह!' बोलो, प्राण आती है इसमें। आप 'महादेव महादेव' बोलो, बहुत अद्भुत है लेकिन 'हरहर महादेव' करो, प्राण आ जाता है। मेरे पूज्यपाद गोस्वामीजी 'विनयपत्रिका' में जहां पुकारात्मिक पद है वहां 'हे' अक्षर से आरम्भ करते हैं। 'हे हरि! हे हरि! हे हरि! हे हरि! हे हरि!' सूरदास कभी 'हे गोविंद! हे गोपाल!' से आरम्भ करते हैं। इन महाकवियों ने हकार को पुकार की आत्मा समझकर हकार का उपयोग किया है। गांधी तक चले जाओ तो गांधी का राम अकेला न रहा, 'हे राम!' आदमी मरा लेकिन प्राण लेकर 'हे राम!' बोला। प्राण साथ में रखा। इसलिए मैंने गांधी की समाधि पर कथा कही तब कहा कि यहां कोई सोया नहीं है। मेरी अनुभूति कहती है, राजघाट पर गांधी अभी भी जाग रहा है। और देख रहा है कि मेरे देश में क्या हो रहा है? सूरदास 'हे गोविंद! हे गोपाल!' बोलते हैं। तो 'हे' जो पुकार की आत्मा है उसको लगाकर यदि पुकारे तो शब्द पहुंचता है। और कोई-कोई शब्द में इतनी मंत्रशक्ति होती है कि आपके शरीर के कुछ भाग स्वाभाविक विशिष्ट अदा में आ जाते हैं। आप 'हे' बोलो तो करीब-करीब हाथ ऊपर उठ ही जाएगा।

तो 'हे हरि', 'हे गोविंद', 'हे गोपाल।' दादाजी के मुख से मैं कभी-कभी सुनता था। दो शब्द बोलते थे कभी-कभी। 'गुरुदेव समर्थ' ये बार-बार उसके मुख से निकलता। लेकिन दो शब्द आते थे कभी-कभी 'हे ईश्वर!' बोलते। 'हे राम' नहीं बोलते थे। 'हे ईश्वर!' या तो कहते, 'हे प्रभु!' कारण कोई नहीं था। कोई नौबत भी नहीं थी कि कोई समर्थ को याद किया जाये। प्रभु माने समर्थ। मैं जैसे ज्यादातर 'हे हरि' बोल लेता हूं। दादाजी 'हे ईश्वर' बोला करते थे। 'हे प्रभु', ये उनके मंत्रात्मक शब्द थे। स्मृतियां है तो बहुत अच्छा लगता है, बहुत अच्छा लगता है। आप मेरे हैं इसलिए बोलता हूं अन्यथा आत्मश्लाघा हो जाएगी। अत्मश्लाघा निंदनीय है लेकिन आत्मनिवेदन वंदनीय है। आत्मनिवेदन भक्ति का अंतिम शक्ति स्थान है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णो: स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यात्मनिवेदनम्।।

पहुंचे हुए लोग, साधनाशील लोग जब अपनी आत्मकथा लिखते हैं तो उसमें आत्मश्लाघा नहीं होती है, अपना आत्मनिवेदन होता है। जैसे महात्मा गांधी। उसमें आत्मनिवेदन है। मैंने ये चूकें की, मैंने ये भूलें की। ये सब कहा उसने। आत्मनिवेदन भक्ति है, यस।

मुझे ये दादा का स्मरण हुआ तो एक घटना याद आती है। कहो तो कहूं? दादा कभी मुझ पर रूठते नहीं थे, कभी भी, नेवर। न कभी डांटा। कभी नहीं। कभी आंख भी नहीं मरोड़ी यार! लेकिन पिताजी कभी चूक हो जाये, छोटी उम्र तो कभी वो भी प्यार से थोड़ा डांट देते थे। और यदि दादा की उपस्थिति में डांटा गया तो पिताजी की आ बनती थी! ये मेरा अनुभव है। एक बार ऐसा हुआ कि पीतल के लौटे में गांव में पडोसी किसान एक शेर दूध रोज लाते थे। वो दूध माँ ले आई थी। तो लौटे में दूध था। रसोईघर में ले जाने के बदले वो जो पानी का पानियारा था वहां रखा। दादाजी पूजा कर रहे थे। सुबह का समय था तो पिताजी ने मुझे कहा कि वो ले आओ। तो हम जो देहातों में जीते थे, ये तो स्वर्णिम जीवन था, गोल्डन लाइफ़ थी यार! वस्तुएं नहीं थी लेकिन जीने का आनंद बहुत था। तो हम क्या करते थे कि जो मिट्टी का जो बड़ा मटका होता है न जैसे देहातों में पानी भरकर रखते हैं। उसको आधा काटते थे। उस कुंडा रखते थे। हाथ धोया, पानी उसमें जाये। मुंह धोया, पानी उसमें जाये। फिर वो भर जाये तो उठाकर के घर के बाहर जहां किसी को नुकसान न हो वैसे डाल देते थे। तो ये मुझे कहा। ये चूक तो मेरी थी। मैं समझा कि ये जो लौटे में है वो डाल दें। मोरारिबापू ने लेकर डाल दिया और पिताजी ने देखा। पिताजी थोड़ा डांटे! उन्होंने कहा कि आंखें परमात्मा ने क्यों दी है? ऐसा बोल गए। दादा 'मानस' का पाठ करते थे। ऐसे देखा। पिताजी ने कहा, जरा देखो तो सही! पानी डाला जाये और तूने दूध डाल दिया! और जानता तो है एक लौटे दूध में चौबीस घंटा चलाना होता है! इसमें भी कोई मेहमान आ जाये, ये हो, ये हो। तो ये क्या किया? अब कुछ कसूर तो अपना था तो करे भी क्या? इसलिए मैं चुप खड़ा रहा। तो दादाजी 'मानस'का पाठ रोककर के खड़े हो गए। मेरे पिताजी का नाम प्रभुदास। तो वो तो प्रभुदास कहते। 'प्रभुदास!' 'हां!'

'तूने नहीं सुना कि लोग दूध में पानी डालते हैं, ये बच्चे ने पानी में दूध डाला! जरा कद्र करो।' ऐसे उसने बचाव कर लिया था। दूध में लोग पानी डालते हैं देहात में और इसने पानी में दूध डाला। मेरे लिए कितना बड़ा संदेश था ये! तब से शायद सीख गया कि पानी में भी दूध डालते जाओ। पानी दूध न हो तो कोई चिंता नहीं, थोड़ा रंग तो बदलेगा यार! इसलिए गाये जा रहा हूं, गाये जा रहा हूं। चौपाइयां गाये। कम से कम ज़माने का थोड़ा रंग तो बदल जाये। ये जमाना दूध हो जाये ये तो असंभव है लेकिन कम से कम थोड़ा रंग तो बदल जाये।

तो जो 'हे' है वो पुकार की आत्मा है। मकार है वो महत्तम तत्त्व है। अब इसका अर्थ भाष्यकार ये करता है कि महत्तम तत्त्व को 'हे' कहकर पुकारो। निम्न को मत पुकारो। क्षुद्र में हाथ मत डालो। पुकारना है तो महत्तम तत्त्व को पुकारो। निम्न की उपेक्षा मत करो लेकिन यदि पुकारना है तो महत्तम को पुकारो। आवाज़ किसको दें? और ऐसी आवाज़ जो दी जाती है तो विफल भी नहीं जाती, सुनाई देती है। सुननेवाले बिना कान सुनते हैं। 'मानस' का मंत्र है-

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।

प्राणवान पुकार का प्रतीक है 'हे' और यदि ये पुकार करनी ही है तो महत्तम की करो, निम्न की नहीं; क्षुद्रों की नहीं; परम की हो। चाहे वो परम सत्य हो, चाहे वो परम प्रेम हो, चाहे वो परम करुणा हो उसकी हो। घृणा की पुकार न हो। हिंसा की पुकार न हो। मारो, काटो, उसके लिए पुकार प्राणवान नहीं रहती। मारो कहनेवाले से ज्यादा ताकत पुकार में होती बचाओ कहनेवाले में। 'मारो, मारो' कहनेवाले में कमजोरी का प्रदर्शन है। अरे, तुम में सामर्थ्य होता तो तेरी बोली मार देती। शस्त्र की जरूरत क्या है? तेरी नज़र मार देती यार! तेरी निगाहें कहीं का नहीं रहने देती यदि सामर्थ्य है तो। तुम्हें उपकरण की क्या जरूरत है? तो मारो, इस पुकार प्राणहीन है, हिंसक पुकार है। बचाओ, इसमें ताकत है। सोचिए, पुकार यदि करना ही है तो निम्न की नहीं, महत्तम की ओर करें। पुकार पहुंचानी है तो वहां पहुंचाई जाये। तो महत्तम जो तत्त्व है उसके प्रति है पुकार। अब महान के प्रति हम क्यों पुकारें? हम उनको क्यों आवाज़ दें? क्या हमें चाहिए? पद चाहिए? नको। प्रतिष्ठा चाहिए? नको। पैसे चाहिए? बिलकुल नहीं। वाह-वाह चाहिए? नहीं। तो किसके लिए हम महत्तम तत्त्व को पुकारें? हम काफ़ी नहीं है अपने आप में? क्यों किसी की

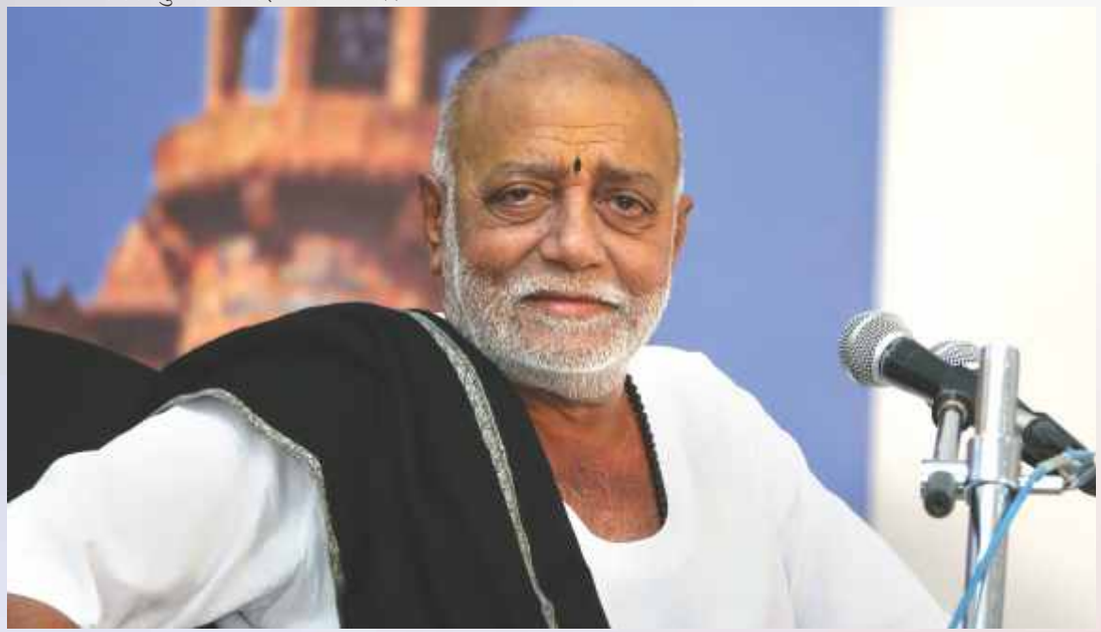

दाढ़ी में हाथ डालें? लेकिन भाष्यकार कहते हैं, 'श' का अर्थ है शरणागति। शरणागति के लिए पुकार है। महत्तम तत्त्व की शरणागति के लिए मैं पुकार कर रहा हूं। मुझे तेरी शरण में आना है। तेरी शरण में मुझे रख। मुझे तेरे चरण चाहिए, तेरा चेहरा नहीं। मैं कल का निवेदन फिर दोहराऊं। चेहरा मोह पैदा करता है, चरण विशुद्ध प्रेम पैदा करता है।

'रामचरितमानस' में 'सुन्दरकांड' की कथा में आता है कि जानकीजी पुकार कर रही हैं आकाश के सितारों को, हे अग्नि, तू नीचे आ, मुझे जला दे। राम के विरह में अब जीया नहीं जा रहा है। तो हनुमानजी से नहीं रहा गया तो वो अशोक वृक्ष के पल्लव में छिप गये थे, वहीं से वो अंगूठी फेंकते हैं। जानकी को लगा कि मैंने अग्नि मांगा तो मानो अशोक ने मुझे अंगार दे दिया। मुद्रिका मणि की थी। तो उसको लगा कि ये अग्नि आई। तो जानकी ने एकदम उठा ली और चकित चित्त से, ये तो मुद्रिका है! तो सोचने लगी कि ये मुद्रिका कहां से आई? माया से मुद्रिका बनाई नहीं जाती। राम को कोई जीत नहीं पाता कि जीतकर राम से ले ले। तो ये मुद्रिका आई कहां से? उसी समय हनुमानजी रामकथा गाने लगे। जानकीजी ने कहा, इतनी सुंदर कथा गा रहा है छिपकर! तू प्रगट हो ना! और जैसे हनुमानजी प्रगट हुए तो जानकीजी एकदम मुंह फेर लेती है! हनुमानजी ने बहुत हकारात्मक अर्थ निकाला कि माँ, तूने अच्छा किया। दुनिया को एक मेसेज दिया कि कथाकार की कथा ही सुनने जैसी है, कथाकार का मुख देखने जैसा नहीं है। तू व्यक्ति को न पकड़, तू वक्तव्य को पकड़।

हमारी पुकार महत्तम तत्त्व की ओर हो। और वो क्षुद्र चीजों के लिए ना हो; केवल शरणागति के लिए हो, उसी का अर्थ है महेश। मांग करो तो महान से मांग करो। और करो तो क्षुद्र न मांगो। तेरी शरण में ले। चरण तेरा नहीं छोडूं बाप! क्योंकि इसीमें मेरे चारों धाम हैं। इसी में मेरा धर्म है, इसी में मेरा अर्थ है, इसी में मेरा काम है, इसी में मेरा मोक्ष है। मुझे केवल चरण दे। इस देश ने मांगी शरणागति। मुकुट नहीं मांगे, पादुका मांगी। चरणपीठ मांगी, राजपीठ कभी नहीं मांगी। भरत ने अयोध्या की राजपीठ ठुकराई; चरणपीठ मांगी।

तो मेरे श्रावक भाई-बहन, शरणागति के लिए प्राणवान है पुकार; लेकिन हो महत्तम तत्त्व की ओर, क्षुद्रों की ओर नहीं। इधर-उधर भिखमंगापन न किया जाये। और कहीं जाने की भी जरूरत नहीं। जहां है वहां पुकारा जाये। हरिद्वार में जाकर पुकारने की जरूरत नहीं। वहां जाकर पुकारो तो अच्छी बात है। लेकिन 'मानस' तो कहता है, 'प्रेम तें प्रकट होई मैं जाना।' तुम जहां हो वहां प्रेम करो, परम प्रकट होगा। ये 'मानस' का मंत्र है। सवाल है प्रगटीकरण का। तो बिलकुल है, अभी है, यहां है, सबके लिए मौजूद है ये परमतत्त्व।

बिरबल को एक आदत थी। आपने सुना होगा। वो कभी-कभी, 'या अल्लाह' बोलता था; कभी कहता, 'हे परमात्मा!' ये बिरबल का शब्द है, 'हे परमात्मा!' 'हे परमात्मा!' एक दिन शहेनशाह अकबर ने पूछा, बिरबल, तू सर्वधर्म समन्वय करता है? बोले, मैं करता नहीं, सहज है। मेरे मुख से जो निकल जाता है। मुझे भी कई लोग तथाकथित धर्मावलम्बी पूछते हैं कि बापू, आप बीच-बीच में 'अल्लाह करे' ऐसा क्यों बोल देते हैं? 'ईश्वर करे' ऐसे क्यों नहीं? मैंने कहा, तू बीमार है! तू मुंबई में कोई अच्छी होस्पिटल में दाखिल हो जा! जो मेरी मोबाइल अस्पताल में ठीक नहीं हो पाया वो कहीं ठीक नहीं हो पायेगा! ये मेरी चलती-फिरती आरोग्यालय है। मैंने कहा, ये मैं कोई प्रयास नहीं कर रहा हूं। मेरे मुख से निकल जाता है कि 'अल्लाह करे।' मैं बार-बार बोलता हूं तो इसमें आपको चोट क्यों लगती है? कितनी-कितनी क्षुद्र बातों में हम राजी हो जाते हैं, नाराज हो जाते हैं!

तो 'मानस-महेश' को केन्द्र में रखकर हम महेश-महिमा का गायन कर रहे हैं। एक भाई ने पूछा है, 'मेरा गुरुमंत्र अजपा तक पहुंच चुका है। एक माला कम हो गई है। किन्तु गुरुभाई ने मुझे कहा कि गुरुमंत्र केवल माला पर ही हो सकता है, अजपा नहीं। ये अपराध होगा। अजपा में केवल 'राम-राम' ही जपा जाये। मेरी जुबान पर केवल गुरुमंत्र ही बहता है। गुरु अब नहीं है। मुझसे अनजाने में अपराध तो नहीं हो रहा है? बापू, कृपया कुछ कहें।' मेरा अभिप्राय मांगा है तो मेरे श्रोता को मैं इतना ही कहूं कि आपके गुरुभाई कहे उसका मैं स्वागत करूं लेकिन मेरा अभिप्राय ये है कि गुरुमंत्र हो या राम महामंत्र हो या कोई भी मंत्र हो यदि आपके जीवन में वो अजपा की स्थिति तक पहुंच गया है तो कोई भी मंत्र आप अजपा जप सकते हैं। इसमें कोई गुरु अपराध नहीं होगा। गुरुभाई नाराज होगा, गुरु नहीं नाराज होगा। कोई भी चीज अजपा हो जाये, मैं स्वागत करूंगा। अच्छी स्थिति है। नाम ही अजपा हो जाये ऐसी कोई बात नहीं। यदि कुछ नियम है भी लेकिन

कलियुग में सभी नियमों को ईधर-उधर संतों ने किया है। मंत्र को उल्टा-सुल्टा भी कर दिया है। मेरी व्यासपीठ को पूछा है तो मैं तो छूट देता हूं। आपका गुरुमंत्र भी अजपा हो गया तो होने दो।

दूसरा प्रश्न, 'बापू, बेटी के यहां भोजन कर सकते हैं या नहीं? नहीं करते हैं तो बेटी नाराज होती है कि आप लड़का-लड़की में भेद करते हैं। कौन गलत है? बेटी कहती है, आप बापू को सुनते हो तो फिर जड़ता की बातें करते हो?' आपकी बेटी आपसे ज्यादा सयानी है। मैं स्वागत करता हूं इस बेटी का और मैं खुल्ला कहूंगा कि बेटी के घर भोजन कर सकते हो। ये किसने आपको सिखाया? भोजन गौण है। किसी का दिल तोड़ना ये ज़िन्दगी नहीं है। दिल नहीं तोड़ो। बेटी के घर भोजन न करो! ये क्या? क्या है ये? ये मूढ़ता है। यदि आप ये मानते हैं कि बेटी को तो देना चाहिए। तो आप भोजन करें, तो भोजन करने से पांच गुना दे दो बेटी को कुछ। भोजन तो तुम मुख से गले में डालोगे ना! तो तुमने जो गले में डाला है, उसी गले से सोने की चेन निकालकर उसको दे दो! ये तो नहीं करना है पर झूठे सिद्धांतो में मूढ़ता में जीना है! बाहर निकलो। यद्यपि विचार के रूप में ठीक है कि बेटी का हम न खाएं, लेकिन बेटी नाराज हो जाये ये ठीक नहीं।

तो तीरथराज प्रयाग में कर्म की पीठ पर बैठकर याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी की जिज्ञासा के समाधान में रामतत्त्व क्या है उसके जवाब में रामकथा के बदले पहले शिवकथा-महेश की कथा सुना रहे हैं। तो एक बार के त्रेता युग में भगवान शंकर अपनी धर्मपत्नी सती, दक्ष की जो कन्या है जिससे शिव ब्याहें है उसको लेकर कुम्भज ऋषि के आश्रम में कथा सुनने के लिए जाते हैं। कुम्भज ऋषि को बड़ी प्रसन्नता हुई। दोनों की पूजा की। शिव ने बड़ा प्यारा अर्थ निकाला कि ये महात्मा कितने सरल, कितने उदार हैं कि पूजा तो मुझे महात्मा की करनी चाहिए श्रोता की हैसियत से। लेकिन धन्य है, वक्ता होते हुए ये श्रोता की पूजा करने लगा! लेकिन सती दक्षकन्या, इसलिए उसने गलत अर्थ कर दिया कि ओह! अभी से हमारी पूजा करने लगा वो क्या ख़ाक कथा सुनाएगा? और जन्म ही जिसका घड़े से हुआ हो, वो सागर जैसी कथा क्या सुनाएगा? सती ने गलत अर्थ कर दिया। मेरे श्रावक भाई-बहन, कोई सन्मान दे तो उसको अपना अधिकार मत समझना; उसकी उदारता समझना। शिव ने परम सुख से कथा सुनी। सती का नाम काट दिया। बैठी तो जरूर वो भी लेकिन सुना नहीं। कभी-कभी कथा में हम बैठते हैं लेकिन पूरा सुनते कहां? फिर भी कथा में बैठो, संसार की व्यथा में बैठने से बेहतर है। बाकी कहां हम पूरा सुनते हैं? यदि सुनते हैं तो हम अपने ढंग से अर्थ निकालते हैं! या तो चुक जाते हैं या तो सुनते-सुनते कई प्रकार की प्रवृत्तियां करते हैं! सुनने आये हो तो सुनो ही।

कुम्भज ऋषि को महादेव ने कहा, बाबा, आपने हमको कथा सुनाई। हमारा भी कर्तव्य है कुछ फल, पुष्प आपके चरणों में रखे। आपकी क्या सेवा करें हम? तो कुम्भज ने कहा, आप मुझे भक्ति का वरदान दो। दक्षकन्या सती के साथ महादेव कैलास की ओर चल दिए हैं। अब वर्तमान त्रेतायुग जो था उसमें राम का अवतार भी वर्तमान था; लीला चल रही थी। राम का वनवास था। सीता का अपहरण हो चुका था और राम-लक्ष्मण जानकी के विरह में नरलीला करते-करते अभिनय करते रो रहे थे। अन्तर्यामी महेश समझ गए। भगवान की ये नरलीला देखकर दूर से महादेव ने कहा,'हे सच्चिदानंद, हे जगपावन, मैं आपको प्रणाम करता हूं।' सती के मन में बुद्धि ने तरंगें पैदा की, ये काहे का ब्रह्म है? अन्तर्यामी शिव जान गए। शिव ने कह दिया, देवी, आपका नारी स्वभाव है। संशय मत करो। भरोसा करो। मैं आपको बता दूं कि ये कौन है? मन को स्थिर और शुद्ध करके बड़े-बड़े महात्मा जिसका ध्यान करते हैं वो राम है। ये लीला कर रहे हैं। लेकिन परमतत्त्व है। ये निजतंत्र है, स्वतंत्र है। देवी, यकीन करो, संशय ना करो। तुलसी फिर 'महेस' शब्द पुकारकर यहां बोलते हैं-

लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिवँ बार बहु।
बोले बिहसि महेसु हरिमाया बलु जानि जियँ।।

भगवान शिवजी ने बार-बार अपनी पत्नी सती को समझाया कि ये ब्रह्म है देवी, जिसकी कथा कुम्भज ने गाई। ये मेरे इष्टदेव परमात्मा हैं। लेकिन सती को उपदेश नहीं लग रहा। बार-बार दोहराया। तब जाके महादेव-महेश हंस पड़े कि अब सती का कोई दोष नहीं। इस प्रसंग पर मैं कहता रहता हूं कि परिवार में कोई किसी को पूरे प्रामाणिक प्रयत्न करके समझाने की कोशिश करे फिर भी सामनेवाले व्यक्ति ना माने तो फिर मुस्कुरा देना, ज़िद्द मत करना। हरि पर छोड़ देना। कितना बड़ा समाधान 'मानस' का ये प्रसंग दे रहा है! सती को शिव ने कहा, मेरे कहने से भी आपका संशय नहीं जा रहा है, मुझे लगता है विधि विपरीत होने जा रहा है। आप जाकर खुद परीक्षा करें। आप बुद्धि से परीक्षा करो, प्रमाणित करो कि ये भ्रम है कि ब्रह्म है? आप निर्णय करो। बुद्धि सदैव परीक्षा करके मानती है और भक्ति सदैव प्रतीक्षा कर के मानती है। भक्ति का मार्ग प्रतीक्षा का है, बुद्धि का मार्ग परीक्षा का है। बुद्धिमान होने के नाते सती तुरंत तैयार हो गई।

शिवजी एक वृक्ष के नीचे बैठ जाते हैं। शिवजी ने सोचा कि परमात्मा ने जो निश्चित किया होगा वो ही होगा, मैं क्यों तर्क-वितर्क करूं? लेकिन निष्क्रिय नहीं हुए शिव। हरिनाम जपने लगे महादेव। बस ये सीखने जैसी बात है। पत्नी ना माने तो प्रामाणिक प्रयत्न करो। फिर भी ना माने तो मुस्कुरा दो, बात को लाइट कर दो। चलो, हरि की इच्छा। बैठकर हरि का आश्रय करें। ये एक बहुत बड़ा समाधान है। और सती यहां जाती है राम की परीक्षा करने। सीता का रूप धारण किया। मेरे भाई-बहन, रूप बदला जा सकता है, स्वरूप का क्या? रूप अनेक होते हैं, स्वरूप एक होता है। रूप बहिर् होता है, स्वरूप भीतर होता है। रूप मूर्छित होता है, स्वरूप कायम जाग्रत रहता है साक्षी के रूप में। नकली सीता बनी सती। जैसे वो सामने आई, भगवान राम ने सती को प्रणाम किया क्योंकि ये तो सती है। आप अकेली क्यों यहां धूमती है माताजी? मेरे पिता शंकर कहां है? भगवान राम ने पूछा। आप अकेली क्यों धूम रही हैं? पकड़ी गई। और सती जैसे लौटी, सामने से राम-लक्ष्मण-जानकी तीनों आ रहे हैं। सती सोच रही है, ये क्या है? चारों ओर पूरा ऐश्वर्य! सती नहीं सहन कर पाई। शिव के पास लौटी।

सती आई और शिवजी ने मुस्कुरा कर के पूछा, देवी, आप कुशल तो हैं? पक्का हो गया, ये ब्रह्म हैं कि मेरी भूल है? अब सती झूठ बोली। आदमी एक भूल करता है तो भूल को छिपाने के लिए खबर नहीं, कितनी ओर भूलें करने लगता है! ये नियम है। सती ने कहा, मैंने कोई परीक्षा नहीं ली। शिव ने ध्यान में देखा तो सती ने जो किया सब देख लिया लेकिन महादेव बोले नहीं। यही था महादेव का शील। भगवान शंकर ने मन में संकल्प कर लिया कि सती ने सीता का रूप लिया तो सीता तो मेरी माँ लगती है। अब सती से मेरा कोई सांसारिक रिश्ता नहीं रहा। शिवसंकल्प किया। कैलास जाकर वो बैठ गए बाहर। सती समझ गई कि मेरा त्याग हो गया। सत्तासी हजार साल की तपस्या शिव की। सती अकेली रो-रोकर कृशकाय हो गई। बहुत पछताई लेकिन अब करे भी क्या? इतने सालों के बाद शिव जागे। सती सन्मुख आई। रसप्रद कथा सुनाई। इतने में दक्ष महाराज की कथा आई। सती ने प्रश्न किया, भगवान! ये विमान कहां जा रहे हैं? बोले, तुम्हारे पिताजी यज्ञ कर रहे हैं। मेरे कारण आपको भी भुला दिया है। सती ने ज़िद्द की, आप ना आओ तो कोई वात नहीं लेकिन मैं तो उसकी पुत्री हूं। बोले, पुत्री माँ-बाप के घर जा सकती है बिना निमंत्रण। मित्र मित्र के घर बिना निमंत्रण जा सकता है। गुरु पास शिष्य बिना निमंत्रण जा सकता है। लेकिन फिर भी जहां विरोध हो, वहां जाने में फायदा नहीं। फिर भी सती नहीं मानी। पिता के यज्ञ में जाती है और यज्ञ में शंकर का भाग ना देखा। बहुत क्रोध आ गया कि मेरे पति का इतना बड़ा अपमान और ये ऋषिमुनि भी चुप है! आक्रोश में आई शिव अर्धांगिनी सती दक्ष के यज्ञ में जलकर भस्म हो गई। मांग की, जन्म-जन्म मुझे स्त्री का जन्म देना और शिव को ही प्राप्त करूं।

दूसरा जन्म हिमालय के घर, पर्वत के घर पार्वती बनकर आई। शैल के घर शैलजा बन कर आई। बुद्धितत्त्व श्रद्धा में परिवर्तित हो गया। हिमालय की बेटी माने अचल श्रद्धा। बेटी बड़ी होने लगी। नारद आये। नामकरण किया। आपकी बेटी को कौन वर मिलेगा वो बता दिया। शंकर के लक्षण बताये। माँ-बाप को दुःख हुआ कि ऐसा पति मिले! लेकिन सती समझ गई कि बाबा नारद ने जिसका वर्णन किया है वो महादेव के सिवा कोई नहीं हो सकता। नारद ने कहा, तुम्हारी बेटी तप करे तो शिव मिलेगा। सती तप करने का निर्णय करती है। तप फलित हुआ। आकाशवाणी हुई कि हे पार्वती! तुम्हें शिव मिलेंगे।

सती की कथा सुनाकर अब शिव की ओर हमे मोड़ते हैं तुलसी कि शंकर का क्या हुआ? सती के वियोग में घूमते रहे। एक बार ध्यान में बैठे। शिव के नेम-प्रेम को

महत्तम से महत्तम तत्त्व कोई हो तो शिव है। मैं रामकथा का गायक हूं, राम की रोटी खा रहा हूं, अवश्य। राम मेरे लिए सब कुछ है। फिर भी मैं कहूंगा कि शिव ने राम की कथा गाई, लेकिन शिव की प्रतिष्ठा तो राम को ही करनी पड़ी, यस। कथा तो शिव ने गाई रामकथा, यस। जहां सेतुबंध निर्मित किया गया वहां भगवान को ये पुण्य मनोरथ प्रगट हुआ कि ये उत्तम धरणी है। स्थापना तो राम ही करते हैं। इसका मतलब ये है कि ये शिव महत्तम तत्त्व है।

देखकर, भक्ति की अखंड रेखा को देखकर भगवान प्रगट हुए। शिव को जगाया। कहा, महादेव, मैं आज आपसे एक वरदान मांगने आया हूं। हिमालय की कन्या पार्वती नारद के कहने पर तप कर चुकी है। आकाशवाणी से मैंने वरदान दे दिया है। आप उसका पाणिग्रहण करो। अब ये सती नहीं है, पार्वती है। अब ये बुद्धि नहीं है, श्रद्धा है। शिवजी ने हां कह दी। और उस अंतराल में, तारकासुर नामक एक राक्षस हुआ जो देवताओं को बहुत पीड़ा देने लगा। भगवान शंकर का ब्याह हो और उसके घर पुत्र का जन्म हो तो शिव का बेटा ही तारकासुर को मार सकता है। देव स्वार्थी लोग आ गए। शिव को फुसलाने लगे। ब्याह के लिए राजी किया और सब देव बाराती बनने के लिए तैयारी में लग गए। ये दूल्हा जो मुख्य व्यक्ति उसको शृंगार करने के लिए कोई नहीं खड़ा रहा! बाबा अकेला बैठा है जिसका ब्याह होना है। उसके कुछ भूत-प्रेतगण इधर-उधर थे। शंकरजी से डांटने लगे कि आप भोले हैं बिल्कुल, ये देवता फुसला गए आपको कि शादी करो और आपने हां कह दी? शादी में मुकुट चाहिए, कहां से लाओगे? बोले, मेरी जटा का मुकुट बना दो। और गहने चाहिए। सर्प का गहना बना दो। वस्त्र? मृगचर्म लपेट दो।

भगवान शंकर का शृंगार हुआ अवधूत दशा में और देवतागण मजाक करने लगे! भगवान शंकर ने अपने गणों को कहा कि ये शादी मेरी हो रही है। ये लोग मेरी मजाक कर रहे हैं! क्योंकि हमारी संख्या कम है। दुनिया में जितने स्मशान हो, जितने बन्दे अपने सोये हों, इन सबको शाबर मन्त्र का पाठ करके जाग्रत करो कि बाबा का ब्याह हो रहा है, सपरिवार आओ। पूरी दुनिया से भूत-प्रेत शिव की बारात में आये। अमरिका से आये, अफ्रिका से आये, ब्रिटन से आये! भाषाभेद था। हिंदुस्तान से जो भूत-प्रेत स्मशान से निकले वो 'हर-हर' कहते थे। अमरिका से आये वो 'हाय-हाय' करते थे! लेकिन सब पूरी दुनिया से भूत-प्रेत आये।

महारानी मैना, पार्वती की माता स्वर्ण थाली में आरती सजाकर लाई है। और आरती उतारने गई ही, हाथ से स्वर्ण थाल गिर गया! महारानी मूर्छित है। सखियां उसको निजमंदिर में ले गई। इतने में नारदजी आ गए। नारदजी ने कहा, मैना, मैं समझ रहा हूं आप मुझ पर नाराज हैं। लेकिन अब सुनो, तुमने द्वार आरती करते हुए जो थाली गिराई और आपके मन में गैरसमझ हो गई, वो परमपिता शिव है। और ये कन्या जिसको तू अपनी बेटी समझती है, सांसारिक रीत से आपकी बेटी है लेकिन तू उसकी बेटी है। ये जगदम्बा है। पूरे जगत की माँ है। जब नारद ने स्पष्टता की, सब पार्वती को प्रणाम करते हैं। क्योंकि भीतर में ही शक्ति होती है। हमारे द्वार पर ही शिवतत्त्व होता है लेकिन नारद जैसा कोई बुद्धपुरुष परिचय न कराये तब तक हम परिचय नहीं कर पाते। भगवान शिव की सवारी निकली। स्वर्ण सिंहासन पर महादेव दूल्हे के रूप में बिराजमान। अष्टसखियां उमा को दुल्हन के रूप में मंडप में लाई है। लोक ओर वेदरीति से विवाह सम्पन्न होने लगा। शिव-पार्वती जुड़ गए। कुछ दिन रुके। कन्या बिदा की बेला आई। पूरा नगर उदास हो गया। हिमालय ढीला हो गया। मैना चुप, क्योंकि बेटी जा रही है। और हमारे भारत में कन्या की विदाई कोई भी बाप हो, टूट जाता है। बेटी की विदाई किसको नहीं रुलाती? हिमाचल उदास है। बेटी को डोली में बिठाई है। पर्वत की गिरिमाला में जब बेटी की डोली दिखती बंद हुई तब हिमाचलवासी उदास चेहरे लौट जाते हैं।

शिव कैलास पहुंचे। शिव-पार्वती का स्तोत्रगान करके देवता अपने-अपने लोक में गए। महाराज याज्ञवल्क्य भरद्वाजजी को कहते हैं, है ऋषि! शिवचरित्र समुद्र है। वेद भी पार नहीं पा सकते। शिव और पार्वती का विहार कौन वर्णन करे? काल मर्यादा पूरी हुई। पार्वती ने पुत्र को जन्म दिया। कार्तिकेय का जन्म हुआ। षडमुख है ये। पुरुषार्थ का प्रतीक है और कार्तिकेय ने तारकासुर नामक राक्षस को निर्वाण देकर देवताओं की पीड़ा का हरण किया। शिवचरित्र को समापन करते हुए याज्ञवल्क्य भरद्वाजजी के सामने देखते हैं कि महाराज! आपने मुझे रामकथा पूछी लेकिन मैंने शिवकथा शुरू में सुनाई। लेकिन शिवचरण में प्रेम हो तो ही राम तक पहुंचा जाये इसलिए मैंने शिवकथा सुनाई। ऐसे भगवान शिव एक बार कैलास के वेद विदित वटवृक्ष की छाया में सहज बैठे हैं और पार्वती अवसर देखकर चरणों में प्रणाम करती है और पूछती है, महाराज, गत जन्म में मैं राम को समझ न पाई। अभी भी थोड़ी भ्रान्ति धूम रही है। अब मुझे रामकथा सुनाकर मुझे भ्रान्ति से मुक्त करो। और पार्वती के आग्रह पर महादेव अब कथा का आरंभ करेंगे। वो हम कल शुरू करेंगे।

मानस-महेश : ५

'रुद्राष्टक' स्वयं महेश है

'मानस-महेश', जो इस नव दिवसीय कथा का केन्द्रबिंदु है; जिसकी हम महाशिवरात्रि की इस पावनयात्रा में संवादी सूर में परिकम्मा कर रहे हैं। कथा में तो हम अपने-अपने ढंग से आनंद पा ही रहे हैं। लेकिन मैं मेरी प्रसन्नता ये भी प्रकट करूं, गत संध्या को, सांयकाल को, जहां मैं ठहरा हूं वहां आप सब आये थे और हमारे आदरणीय बुज़र्ग परवाज़ साहब, देवबंदी साहब, हमारे कुंअर साहब, राजभैया; भरतभैया भी हमारे गुजराती कवि थे लेकिन फिर हम उस समय उसका लाभ नहीं ले पाए। लेकिन मैं इतना ही कहूंगा कि कल सांयकाल को आपने सुबह में परिवर्तित कर दिया था! कवि ऋतु बदल देता है। कवि समय बदल देता है। कवि मौसम बदल देता है। कवि जीवन बदल देता है। अपने-अपने ढंग से आपने सांयकालीन जो वर्षा की है। हम बहुत लाभान्तित हुए। मैं व्यासपीठ से आप सभी का बहुत-बहुत शुक्रिया अदा करता हूं। और आज तीन ग्रंथों का लोकार्पण हुआ। तो उसका जो रूप है, बहिर् रूप है वो तो पुस्तक है। लेकिन जब ऐसे कोई विशिष्ट ग्रंथों का लोकार्पण होता है तब मुझे लगता है कि ये पुस्तक का लोकार्पण नहीं हुआ है, सृजक के मस्तक का लोकार्पण हुआ है। क्योंकि इन किताबों में विशेष रूप मस्तिष्क प्रगट होता है। मैं तो मेरी अदा में, मेरी बोली बोलूं तो यही कहूंगा कि प्रोफेट साहिब, पैगम्बर साहिब के बारे में किताब लिखी वो मेरी दृष्टि में सत्य है। आपकी किताब का लोकार्पण हुआ देवबंदी साहब का वो प्रेम है। और 'प्रतीक पांचाली' एक करुणा है। ये सत्य, प्रेम और करुणा का 'मानस' की पीठ पर संगम हुआ है। प्रोफेट सत्य है, पैगंबर सत्य है। और इस बुज़ुर्ग, हर वक्त ये बूढ़ा जवान होता जा रहा है! मैं भिक्षा करते समय भी कह रहा था कि मुझे लगता है कि परवाज़ साहब कहीं ओर मुल्क में जा रहे हैं धीरे, धीरे, धीरे, धीरे। पैर तो जमीं पर है लेकिन परवाज़ तो पहले लगी हुई है। बहुत बड़ी उड़ान है। और इतने विद्वान, साक्षर अपनी बोली के।

हमारे शरफ़ साहब अक्सर कहते हैं कि 'ये उर्दू जुबां है जो हम बोलते हैं।' बहुत मीठी भाषा में आपने कल अपने कलाम पेश किये। और ये तो बहुत प्यारा जगप्रसिद्ध आपका शे'र कि 'मेरे घर कोई दो दिन से मेहमान नहीं आये।' ये पीड़ा मुसलमान की नहीं है, ये पीड़ा हिन्दू की नहीं है, ये पीड़ा इन्सान की है। और पीड़ा बिनसाम्प्रदायिक होती है। पीड़ा कभी साम्प्रदायिक नहीं होती। पीरों को कभी हम साम्प्रदायिक बना भी दें लेकिन पीर का अर्थ भी तो होता है पीड़, पीड़ा। जो हमारे नरसिंह ने छसौ साल पहले गाया गुजरात में, 'वैष्णवजन तो तेने कहिये, जे पीड पराई जाणे रे।' ये पीर। बहुत प्यारा लगा। अभी कुंअर साहब ने कहा ना कि 'कांटा उसके पैर में चुभे और चुभन किसी को।' ये महसूसी इन्सान की महसूसी है। ये संवेदना इन्सान की महसूसी है। तो ये बाजरी की रोटी तब रोती है कि कोई अतिथि नहीं आया! तब मुझे मेरा बचपन याद आता है कि हम गांव में रहनेवाले साधु, रामजी मंदिर के पूजारी। वैष्णव साधुओं में हम को लोग बावाजी कहते थे। बहुत अच्छा लगता है।

तो देहात के लोग हमें रोटी बंधाते थे कि हमारे घर से रोटी ले जाना। तो ताजी-तरोजी रोटी बनाकर के यदि घर में गाय-भेंस है तो मक्खन-बक्खन भी उस पर डालकर के जब हम दोपहर को रोटी लेने जाते तो ताज़ी रोटी देते थे। तो मेरे पिताजी भी रोटी लेने जाते थे, जिसके-जिसके घर की रोटी आनेवाली हो। उसमें से फिर अतिथि को हम खिलाते, ठाकुरजी को भोग लगाते, फिर हम भी खाते थे। तो मैं जरा उम्र में सात-आठ साल का हो गया तो फिर दादाजी-पिताजी मुझे भेजते थे, बेटा, जाओ रोटी का समय हो गया। मुखी के घर से, फलां के घर से, जहां-जहां से लाना होता है, चरवाहे के घर से। और साहब! आप खुश होंगे, आपको राजी करने के लिए नहीं, लेकिन आप दिल से खुश होंगे कि मैं जब तलगाजरडा में मेरे गांव में होता हूं तो मेरी बारी लगती है कि प्रत्येक घर से रोज एक-एक घर से मेरे लिए रोटी आये। इसमें मुसलमान के घर से भी मेरे लिए रोटी आती है। दलित के घर से भी मेरी रोटी आती है। स्वच्छता के जो लोग हैं, जिसको बिलकुल हम निम्न

मानते हैं उसके घर से भी आती है। और मुस्लिम महिलाएं धोये हुए एक रूमाल में रोटी ढांककर के मेरे चित्रकूट में आकर मुझे देते हैं। मैं ये रोटी खाता हूं। ये धर्म बहुत बड़ा धर्म है, मानवता का धर्म, महोब्बत का धर्म। वो मेरे गोल्डन डेय्ज़ थे। तो फिर मैं रोटी लेने जाता था। लेकिन कभी मैं स्कूल में ज्यादा रह गया या तो कुछ कार्यवश रोटी लेने न जा पाया तो पिताजी भी नहीं जायेंगे, कोई नहीं जाये तो उस दिन वो रोटी उसके घर से नहीं लाई जाती थी। तो मैं कभी-कभी सोचता हूं कि उसकी रोटी रोती होगी कि आज मोरारिबापू लेने नहीं आया! रोटी रोती होगी! रोटी रोती है। क्योंकि रोटी रोटी नहीं है; मेरे देश के उपनिषद कहते हैं, 'अन्नं ब्रह्मैति व्यजानात्।' अन्न है ब्रह्म। तो ये आपने बड़ी प्यारी बात कही।

तो परवाज़ साहब ने मोहम्मद साहब का सत्य उद्घोषित किया। ये जात नहीं है, ये नाद है। जात हिन्दू हो सकती है; जात मुसलमान हो सकती है; जात नारी हो सकती है; जात नर हो सकती है। नाद ये तो पैगंबरों की नाद है, फ़कीरों की नाद है, पीरों की नाद है। ये तो एक बिलग ही लंगर है, बिलग ही पंक्ति है जो जाति-धर्म से ऊपर है। आपने एक बहुत मूल्यवान काम किया। जब होना चाहिए, ऐसे समय में आपने ये काम किया। कल तो आप कह रहे थे कि बहुत सोच-समझकर लिखना पड़ा कि कहीं किसी दो पंक्ति पर फ़तवा जारी न हो जाये! लेकिन सत्य को तो साहस करना ही पड़ेगा। और देवबंदी साहब, प्रेम को तो बहना ही पड़ेगा। और करुणा को तो आंसू गिराने ही पड़ेंगे। तो पांचाली भले ऊपर से आक्रमक लगती हो लेकिन कोई उसके अन्तर्चक्षु को देखे तो इनके अन्तर्चक्षु कभी वीरान नहीं होते। ये कृष्ण का एक दूसरा ही रूप था कृष्णा। तो मेरी समझ में आज सत्य लोकार्पित हुआ; आज प्रेम लोकार्पित हुआ; और आज करुणा लोकार्पित हुई। बेचैन साहब, आप सही में बेचैन है। और महाकाव्य कोई दो मिनट में नहीं लिखे जाते। फिलम की दो पंक्तियां आप दो मिनट में लिख सकते हैं खेल-खेल में, ए.सी. कमरे में बैठकर, लो, ले जाओ! ये तो महाकाव्य है। उसके कुछ बंधारण हैं, कुछ नियम हैं। शास्त्रीय नियम भी तो है महाकाव्य के। 'रामचरितमानस', 'रामायण' महाकाव्य है। 'महाभारत' महाकाव्य है। यद्यपि 'रामायण' और 'महाभारत' महाकाव्य तो है ही। आई एग्री, बट ये महाकाव्य है इस से भी तलगाजरडा की दृष्टि में ये महामंत्र है। मैं चाहूंगा, मेरे देश के महाकाव्य कभी न कभी महामंत्र का दर्जा पाएं। ये बहुत बड़ा काम हुआ। और ये ग्वालियर में उसका लोकार्पण। तो मैं बहुत बड़ी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं।

तो आइये साहब, अब 'मानस-महेश' की ओर हम गति करें। भगवान शिव, महेश; 'महेश' शब्द का एक दूसरा अर्थ भी सुन लीजिए। तो महेश का एक अर्थ होता है, 'म' का अर्थ होता है ममता। 'म' माने ममता। 'हे' का अर्थ है हेमता। ये मेरा शब्द नहीं है, महाकवि भारवि का शब्द है। हेम यानी स्वर्ण, हेमता माने स्वर्णपना। जैसे 'मम' से 'ममता' बनता है वैसे 'हेम' से 'हेमता' बना। जैसे शीतल से शीतलता बनती है। सम से समता बनता है। तो मकार का अर्थ है ममता; हेम का अर्थ है यदि भारवि का आश्रय लूं तो हेमता, माने स्वर्णिमपना, जिसको कभी जंग ना लगे ऐसा तत्त्व। और पार्वती का एक नाम हेमा भी है। हेमा मीन्स पार्वती, गौर वर्ण पार्वती। हेमता माने स्वर्णिमता। और 'श' का अर्थ किया है शीतलता। जिसकी ममता हेमवर्णी हो, लौहवर्णी नहीं कि जिसमें जंग लग जाये। 'ममता' बड़ा प्यारा शब्द है। ममता के दो आयाम है बाप! एक संसार की ममता, एक संसार के बनानेवाले के प्रति ममता। संसार की ममता को जंग लगती है और ईश्वर की ओर लगी ममता नित्य-नित्य नूतन और बेदाग़ रहती है। इसको मेरी व्यासपीठ कहेगी हेमवर्णी ममता। सोने को जंग नहीं लगती। सोना सोना रहता है। महेश तत्त्व क्या है? एक ऐसी ममता की ऊंचाई है। संसार की ओर गई हमारी ममता हमें बंधन में डालती है, याद रखें। संसार के प्रति जितनी ममता इतने हम फंसे जाते हैं, ममताग्रस्त हो जाते हैं लेकिन परमात्मा की ओर जितनी ममता गई, इसमें हम नहीं बंधते, हरि बंधता जाता है। 'मानस' में लिखा है-

सब कै ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहि बांध बरि डोरी।।

भगवान राम ने कहा, सब ममता की डोरी इस छोटे-छोटे ये धागे को बुन दे और पक्की रस्सी बनाकर ये रस्सी मेरे पैर में बांध दे। फिर तुम इस रस्सी को खींचो तो मैं खींचे आऊंगा; मैं परवश हो जाऊंगा; मैं तेरे बंधन में आऊंगा। इधर की ममता हमें बांधती है, उधर की ममता हरि को बांध देती है। इतना ही फ़र्क है। तो बाप! ममता स्वर्णिम हो जिसको जंग न लगे तो बुरी नहीं है। तो महेश का एक

अर्थ है एक ऐसी जंगमुक्त ममता, जो साधक को कायम शीतलता प्रदान करे। माने शीतलता दे, ठंडक दे, प्रसन्नता दे। यदि आपको व्यासपीठ के प्रति ममता है, संताप का अवसर नहीं है। 'महेश' शब्दब्रह्म उसी ममता का परिचय है जो हमें शैत्य दे; जो हमें निष्कलंक रखे; जो हमें जोड़े रखे; संलग्न रखे। उसी का एक नाम महेश है।

कल मैंने आपके सामने जिक्र किया कि विनोबाजी ने कुरान सार लिखा उसमें से दस लक्षण निकाले कि परमात्मा का बंदा, भगवान का सेवक, ईश्वर का आश्रित उसके लक्षण क्या है? विनोबाजी ने साररूप में दस लक्षण उठाये इस्लाम धर्म से। मुझे अच्छे लगे और मेरे महादेव से उसकी संगति हो रही है, खासकर के महेश से। इसलिए मैं जोड़ना चाहूंगा। मुझे पूरे याद नहीं थे, तो विनोबाजी के एक ग्रन्थ का नाम है 'भक्तिदर्शन' उसमें एक चेप्टर है, उसमें ये लिखा है। उसमें से ये दस लक्षण लिखकर मैं लाया हूं ताकि छूट न जाये अथवा तो चूक न हो जाय। पैगम्बर साहब मुझे आक्रमक नहीं लगते, बड़े मासूम महसूस होते हैं। मुझे महर्षि रमण बहुत मासूम लगते हैं। मुझे मीरां बहुत मासूम दिखती है। मुझे राबिया बहुत मासूम लगती है। मुझे निजामुद्दीन बहुत मासूम महसूस होते हैं। 'प्रगट न कहेउ मोर अपराधा।' 'मानस' की एक चौपाई है। बुद्धपुरुष है न, हम कितने अपराध करें, कभी प्रगट नहीं बोलेंगे, उसी का नाम है बुद्धपुरुष। वो डांटेगा नहीं। वो तुम्हारी चूक निकाल कर तुम्हें हीन, हल्का सिद्ध नहीं करेगा। तुम कभी ऊपर न उठ सको इतना ग्लानि से बुद्धपुरुष तुम्हें कभी भरेगा नहीं। क्योंकि वो जानता है, जैसा भी है, मेरा है। मेरा आश्रित है। पार्वती को ये महसूस हुआ 'बालकांड' में। यद्यपि मैंने भूल की, सीता का रूप लिया। मेरे प्रभु ने मुझे पूछा कि आपने किस तरह परीक्षा की, तो मैं झूठ बोली कि 'कछु न परीछा लीन्हि गोसाई।' मेरे अपराध मेरे ठाकुर जान गया फिर भी 'प्रगट न कहेउ मोर अपराधा।' मेरे अपराध को उसने प्रगट नहीं कहा कि तुमने ये भूल की है।

तो बाप! कुरान के बन्दे के दस लक्षण जो विनोबाजी ने सारभूत में कहें; वो मैं लिखकर आया हूं। अब महेश के साथ उसको मिलाते जाइये। 'सभी सयाने एक मत।' सबके मत एक हैं। ये विनोबाजी की प्रसादी है, मैं बांट रहा हूं। 'भक्ति-दर्शन' एक कुरान सार ये बिलग छोटा-सा ग्रन्थ है विनोबाजी का, जिसमें कुरान की सारभूत बातें कही है। ये 'भक्ति-दर्शन' में आया है। दस लक्षण जो बतायें उसमें लिखा है, शरणागति पहला लक्षण है। कहां भेद है? और मैं मेरी कथा रोज इसी से शुरू करता हूं, 'श्री रामचंद्रम् शरणं प्रपद्ये, श्री रामदूतं शरणं प्रपद्ये।' हमारी पूरी परंपरा कहती है,'श्री कृष्णः शरणं मम। श्री कृष्णः शरणं मम।' 'देजो अमने साधु चरणों मां वास।' चरण ही मांगे हैं, शरणागति ही मांगी है। बस, तू मेरा हो कि ना हो, तू जाने; मैं तेरा हूं। प्रेम एक ओर से समर्पण देता है, बदला नहीं चाहता, मांग नहीं करता। वो फिल्म की पंक्ति भी अक्सर मुझे बहुत प्रिय हो चुकी है। 'तुम मुझे भूल भी जाओ तो ये हक़ है तुमको।' प्रेम कितना समर्पण करता है! उसको हक़ कह दिया, ये तुम्हारा अधिकार है। मुझे भूल जा, मैं तेरा अधिकार छिनूंगा नहीं। मैंने तो मोहब्बत की है। तू मुझे भूल सकता है क्योंकि तू समर्थ है। तू दाता का दाता है। ये 'हक़' शब्द मुझे बहुत छू रहा है। ये तेरा हक़। मेरा कोई हक़ नहीं तेरे पर। ये कितना बड़ा समर्पण है! लेकिन समर्पित व्यक्ति अपनी बात तो रखेगा दीनता से। शरणागति। ये इस्लाम धर्म का भी सूत्र है और मेरे महादेव का भी सूत्र है। तो जिस महेश के बारे में हम चर्चा कर रहे वो ही बात पैगंबरी में भी आई। तो पहला लक्षण, शरणागति।

दूसरी बात विनोबाजी फरमाते हैं, श्रद्धावान। कुरान सार के मुताबिक कौन है परमात्मा का बंदा? जो श्रद्धावान है। बहुत प्यारी बात। धन जिसके पास हो उसको धनवान कहते हैं। ज्ञान जिसके पास हो उसको ज्ञानवान कहते हैं। बल जिसके पास हो उसे बलवान कहते हैं। विद्या जिसके पास हो उसे विद्यावान कहते हैं। और भगवान शंकर के पास श्रद्धा है तो श्रद्धावान क्योंकि उसकी पत्नी श्रद्धा है। 'भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।' तो ये श्रद्धावान हो गए क्योंकि उसकी धर्मपत्नी ही श्रद्धा है। श्रद्धा से श्रद्धावान उमा-महेश्वर। तो दूसरा लक्षण भी सही सिद्ध हो जाता है।

तीसरी बात, आज्ञा पालकता। परमात्मा का बंदा कौन? खुदा का बंदा कौन? जो उसकी आज्ञा का पालन करे। जिस रूप में आज्ञा दी है उसी रूप में पालन करे। लोग अपने मनमाने भाष्य करते हैं इसीलिए गड़बड़ पैदा होती है। जैसे उतरा है उसी रूप में उसको स्वीकारा जाये। 'आज्ञा

सम न सुसाहिब सेवा।' परमात्मा का बंदा वो है जो आज्ञापालक है। मेरा महादेव कौन है? आज्ञापालक है। 'सिरधरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरम यह नाथ हमारा।' आप जो आज्ञा करो, आपकी आज्ञा मेरे सिर पर। आपने जो कहा, कुबूल। एक मन्त्र है आज्ञा। जो शिव में दिखती है। जो कुरान के सार में भी आई है।

चौथा लक्षण, सत्यभाषी। बंदे का, भक्त का, आश्रित का, साधक का एक लक्षण सत्यभाषी। सत्यवादी हो, सत्यवक्ता हो। शंकर। 'संभु वचन पुनि मृषा न होई।' भवानी कहती है, मेरे मन में बात उतरे, न उतरे लेकिन मेरा महादेव जो बोलता है उसकी बोली कभी झूठ नहीं हो सकती। मेरे युवान भाई-बहन, आप इतने प्रसन्न चित्त से सुन रहे हैं इसलिए मैं कहना चाहूंगा, सत्य के बारे में तीन बातें है- सत्य, प्रिय और हित। सत्य कैसा होना चाहिए? प्रिय होना चाहिए। और सत्य हितकर होना चाहिए। लेकिन सत्य के बारे में बहुत मंथन हुआ और व्यासपीठ कहना चाहेगी कि सत्य प्रिय बोलने से यदि सामनेवाले का हित न होता हो ऐसे समय हितकारी सत्य बोलना बेटर है। प्रिय सत्य बंद करना। तब शास्त्रकार कहते हैं हित देखो और प्रिय बोलने से हित की हानि होती हो तो उसी समय साधक को चाहिए कि थोड़ी प्रियता को हटाए। सत्य बड़ी गहन यात्रा है। सत्यभाषी, कुरान कहता है ये बंदे का लक्षण। और यहां 'मानस' में शिव राम का बंदा है, राम शिव का बंदा है। परस्पर एक दूसरे के पूज्य और एक दूसरे के सेवक हैं। इसलिए महादेव का लक्षण भी सिद्ध है। ये सत्य बोलते हैं। संभु वचन मृषा नहीं होते। सत्यवादिता ये लक्षण है।

पांचवां, धीर। बंदे का लक्षण है धीर हो। बात-बात में एकदम उलझ जाए, बहक जाए, विक्षिप्त हो जाए, वो साधक का लक्षण नहीं है। धीर हो। कैसी भी घटना घटे, कुछ भी हो, धैर्य करें। 'चली न अचल समाधि सिव कोपेउ हृदय निकेत।।' कामदेव का इतना बड़ा आक्रमण फिर भी शंकर का धैर्य देखो! बाबा बैठे रहे, ये उसका लक्षण। विनीत; विनय, विनम्रता, एक शील, एक विवेक, ये बंदे का लक्षण होना चाहिए जो कुरान का सार कहता है। भगवान शंकर का विनीतपना, उसका विनयपना, उसका

विवेक अद्‌भुत! मैं बार-बार सती के प्रसंग में कहता रहा कि सती भूल करती रही और भगवान जो विवेक है, अपनी विनम्रता है, अपनी साधुता है उसको निभाते चले, चुप रहते चले, मुस्कुराते रहे। ये उसका विनीत स्वभाव है। तुम सच्चे हो ना तो भी दूसरे को दिखाने की चेष्टा मत करना। सत्य दूसरों को दिखाने से मजबूत नहीं होता, कमजोर होता है। सत्य अपने आप मैं सर्वसमर्थ है ये मत भूलें। लेकिन कभी-कभी तो मैं देखता हूं, सत्य बोलनेवाला ये सोचता है कि सामनेवाले को झूठ सिद्ध कर दूं! तुम्हारा सत्य विकलांग हो गया! उसको वैशाखी लग गई यार! सत्य तो वो है कि मेरे सत्य को मैं जानता हूं, दूसरे को मैं झूठा सिद्ध ना करूं। मेरे भाई-बहन, भगवान शंकर का ये जो विनय हैं, ये बार-बार कदम-कदम पर 'मानस' में दिखता है। ये विनीत स्वभाव उसका प्रणम्य है।

सातवां लक्षण कुरान सार में आया दाता, दानी। बंदा दानी होता है। शिव के समान दाता कौन? 'आसुतोष तुम्ह अवढर दानी।' आशुतोष, घर में कुछ नहीं लेकिन देता जाता है। तो महादानी है। अमृत दूसरों को दे दे और विष पी ले, इससे बढ़िया दानी कौन हो सकता है? बहुत बड़ा दानी। दाता; वो बन्दों का लक्षण है जो महादेव में खरा उतरता है। महादानी है भगवान शिवजी। आठवां, उपवासी होना। यानी व्रतधारी है। 'सिव सम को रघुपति व्रत धारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी।' व्रतधारी है। उपवासी; उपवासी माने 'भीख मांगी बहु खाई।' भीख मांगकर खाता है। और शास्त्र कहते हैं, भिक्षा से जो भी खाता है, नित्य उपवासी है। आप रोज तीन बार खाओ, चार बार खाओ, जितनी आपकी जठर की क्षमता; जितना भी खाओ लेकिन जब खाओ प्लीज़, भिक्षाभाव से खाओ। बस, भाव ही बदलना है। हम भोजन कर लें, हम लंच ले लें, ये सब प्यारे शब्द हैं लेकिन हम भिक्षा करें। शब्द में भी एक ताकत होती है। 'भिक्षाहारो निराहारो' ग्रंथकारों ने कहा, जो भिक्षाभाव से भोजन कर रहे हैं वो नित्य उपवासी है। महादेव 'भीख मांगी बहु खाई।' इसलिए व्रतधारी के रूप में वो उपवासी हैं। भिक्षाभाव से भोजन करने का मतलब ये होता है कि इशारा ना करे। अपने पात्र में सामनेवाला जो दे उसको खा लेना बस। मुश्किल बहुत होगी, क्योंकि इस व्रत धारण करोगे तो तुम्हें जो पसंद होगी वोही चीज़ परोसनेवाला भूल जाएगा और आपका चित्त वहीं ही रहेगा! और संकेत कर नहीं सकते आप। क्योंकि आप भिक्षाभाव से भोजन कर रहे हैं। उसका इरादा तो नहीं लेकिन वो भूल जाता है। तो संकेत भी नहीं किया जाये। लेकिन प्रसन्नता से अपने पात्र में जो भी आये, उसको भिक्षा समझकर जो स्वीकारे वो उपवासी है। तो उपवास ये व्रत है। जैसे इस्लाम में रोजा। हिन्दुओं में सावन मास का उपवास; एकादशी का उपवास। ये बन्दों का लक्षण है। मेरा महादेव उपवासी है, ये सूत्र सिद्ध होता है।

नौवां, शीलरक्षक है। शिव शीलरक्षक है; शील को निभानेवाला है। और मैंने पहले भी कहा, बलवान होना ठीक है लेकिन बिना शील का बल प्राण बिना का देह है। शील हो। हमारी गंगासती तो कहती है, 'शीलवन्त साधुने वारेवारे नमीए।' तो भगवान महादेव है शीलरक्षक। अद्‌भुत शील है शिव का।

दसवां लक्षण बताया है, ईश स्मरणशीलता। निरंतर अपने इष्टदेव का स्मरण करना बंदे का लक्षण है। मेरे महादेव, मेरे महेश भगवान राम के ऐसे बंदे हैं तो वो निरंतर स्मरणशील हैं। प्रमाण-

तुम्ह पुनी राम राम दिन राती।
सादर जपहु अनंग आराती।।

पार्वती स्वयं कहती है कि हे महादेव, आप रात-दिवस निरंतर राम स्मरण करते हैं। भरद्वाज यही तो कहते हैं-

संतत जपत संभु अबिनासी।
सिव भगवान ग्यान गुन रासी।।

तो स्मरणशीलता जो बंदे का लक्षण है वो भगवान शिव में भी उपलब्ध है। निरंतर स्मरणशील है बाबा। शीलरक्षक है, स्मरणशील है, दानी है, सत्यवादी है, क्या नहीं है? तो महेश के ये दसों लक्षण सिद्ध होते हैं।

तो भगवान महेश को केन्द्र में रखते हुए सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा हम संवाद के रूप में आपके सामने कर रहे हैं। अष्टमूर्ति शिव, ऐसा कहा गया है। शिव यानी महेश। महेश की अष्टमूर्ति है। और आपको याद होगा कभी कहीं 'रुद्राष्टक' की कथा में व्यासपीठ मुखर हुई थी और कहा गया था कि शिव को शास्त्रकार अष्टमूर्ति कहते हैं। इसलिए 'रुद्राष्टक' भी अष्टमूर्ति है। मेरी आंखों से देखो तो 'रुद्राष्टक' स्वयं महादेव है। ये शिवलिंग है स्वयं 'रुद्राष्टक', बस। 'रुद्राष्टक' स्वयं महेश है। ये वाङ्मय मूर्ति है। तो मेरे

महेश की ये आठ मूर्ति है। ये ताम्बा की, सोने की, रूपा की ये सब मूर्तियां है जरूर; मिट्टी की, बालू की, लकड़ी की मूर्तियां, हमारे यहां सब विधान है। जगन्नाथ भगवान की मूर्ति लकड़ी की होती है। कोई सम्पन्न लोग सोने की मूर्ति बना लेते हैं। कोई रजत की, चांदी की बनाते हैं। पंचधातु की बनाते हैं। संगेमरमरी मूर्ति हम बनाते हैं। विशिष्ट पाषाण से हम मूर्ति बनाते हैं। कई प्रकार की मूर्तियों का 'श्रीमद् भागवतजी' में कुछ संकेत हैं कि मूर्ति कितने प्रकार की। लेकिन 'मानस' के अभिप्राय पर महेश अष्टमूर्ति है, आठ मूर्ति। जरा उसकी भी गिनती कर ली जाये कि कौन है ये महेश की अष्टमूर्तियां?

शिव की एक मूर्ति का नाम है जिसको रुद्रमूर्ति कहते हैं। 'रुद्र' शब्द जरा भयवाचक लगता है। लेकिन भयवाचक नहीं है। साधक के इर्द-गिर्द कुछ अभद्र तत्त्व आने लगता है तब उसको महादेव की जो मूर्ति दिखती है वो रुद्र है ताकि अभद्र तत्त्व ये देखकर भाग जाये। साधक के लिए भय नहीं। शिव बड़े कृपालु हैं। हम जब साधना और बंदगी करेंगे तो चारों ओर से अभद्रता आएगी कि ये आदमी इस पंथ पर क्यों चढ़ा? शैतानतत्त्व को अच्छा नहीं लगता! लोग नहीं कहते, हम माला करते तब बहुत गलत विचार आते हैं। ये अभद्रताएं आ रही है। उसी समय कोई ऐसे महेश के गले लगो कि उसका रुद्ररूप तुम्हें न दिखे, तुम्हें जो डराने आये हैं उसे दिखे और अभद्रता भाग जाये। हमारे यहां इस मन्त्र को पूरी दुनिया गा रही है।

या ते रुद्र शिवा तनुरघोरापापकाशिनी।

तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि।

रुद्र मूर्ति बड़ी प्यारी। लेकिन अभद्रता को उसमें भय दिखता है, साधक को नहीं। साधक के लिए रुद्र भद्र है। साधक के लिए रुद्र पूर्ण भद्र है। लेकिन अभद्रों के लिए भद्र रुद्र बन जाते हैं। इसलिए तलगाजरडी दृष्टि जो देखती है वो है एक मूर्ति, रुद्रमूर्ति। शास्त्रों में कुछ भिन्न मूर्तियों का भी जिक्र मिल सकता है, स्वागत। लेकिन जो प्रतीति है सो मैंने तो आपसे कहा। मैं सबसे पहले 'रुद्राष्टक' सीखा हूं। बचपन में पहले दादा ने जो बताया और कभी-कभी वो संकेत करते थे। मैं तो आज बोल रहा हूं कि ये 'रुद्राष्टक' स्वयं शिवमूर्ति है। कोई एक चित्त से 'रुद्राष्टक' को ही महादेव समझकर गायेगा तो उसके सिर पर कभी महसूस करेगा कि गंग की धारा आ रही है। ये परम सौभाग्य की क्षण होगी। ये महसूसी कोई कर पाया होगा तभी तो आया होगा, वरना नहीं।

'विनयपत्रिका' में एक मूर्ति है। एक पद है, आप देख लीजिएगा 'विनयपत्रिका' में। भैरवरूप शिवस्तुति। 'भीषणं भयंकर भैरव' करके महादेव की एक लम्बी स्तुति 'विनयपत्रिका' में। वो भैरव शिव की स्तुति है। पूरे पद में जो लक्षण हैं, शंकर के ही हैं लेकिन उसका नाम तुलसी ने किया भैरव शिव की स्तुति। शिव की भैरव मूर्ति है। वहां गंगा का जिक्र है, चंद्र का जिक्र है, सब कुछ जिक्र है। बड़ा लम्बा पद है। तो अष्टमूर्ति में दूसरी मूर्ति है भैरव मूर्ति।

तीसरी मूर्ति है तलगाजरडी दृष्टि में मंगलमूर्ति हनुमान। 'वानराकार विग्रह पुरारी।' ये शंकर की तीसरी मूर्ति है। ये तलगाजरडी अभिप्राय है। प्लीज़, मार्क इट। मेरी ज़िम्मेदारी मैं कुबूल करता हूं। किसी को तकलीफ़ हो तो ये कुबूल ना करे, लेकिन सत्तर साल की उम्र है मेरी आंखों की। बहुत देखा है इन आंखों से। तो ज़िम्मेवारी साथ बोल रहा हूं कि ये तीसरी मूर्ति है हनुमान, जिसको मंगलमूर्ति कहते हैं।

पवन तनय संकट हरन मंगल मूरति रूप।

राम लखन सीता सहित हृदय बसहु सुर भूप।।

एक मूर्ति है अमंगलमूर्ति। जो ऊपर की मूर्ति है शंकर की, अमंगल है। गंधर्वराज भी कहता है, ये अमंगल है लेकिन भीतर से तू मंगल है। तुलसी उसका ट्रान्सलेशन करते हैं। 'साज अमंगल मंगल रासि।' एक मंगलमूर्ति रूप महादेव का, एक अमंगल। ऊपर से बहिर् कैसा ये लगता है देखो! नंग-धड़ंग है! साप लपेटे हुए हैं!

पांचवीं मूर्ति है बोधमूर्ति। शिव बोधरूप है। बोधमयं, बोध से भरा है। जैसे राम चिदानंद है। शंकर बोधमयं, ये उसका पांचवां रूप है। छठ्ठा रूप है शंकर का गुरुमूर्ति। 'तुम्ह त्रिभुवन गुरु वेद बखाना।' सातवां रूप है भगवान शंकर का, जो जगद्गुरू शंकराचार्य ने आराध्य बनाया, जिसका नाम है दक्षिणा मूर्ति। और आठवां रूप है शांतमूर्ति।

मगन ध्यान रस दंड जुग पुनिमन बाहेर कीन्ह।

ये अष्टमूर्ति है महादेव; महेश के आठ रूप। जैसी साधक की रुचि, साधक की कक्षा, ऐसे रूप की उपासना साधक करता है। तो शिव के बारे में, महेश के बारे में अष्टमूर्ति की भी बातें आई है। सोरी, एक चूक है। एक मूर्ति है वाङ्मय मूर्ति। मंगलमूर्ति और अमंगल मूर्ति एक ही है, भीतर-बाहर एक ही है। लेकिन ये महत्त्व की मूर्ति रही वाङ्मय मूर्ति। इसलिए दादा कहते थे कि 'रुद्राष्टक' स्वयं वाणीरूप शंकर है। एक-एक बंद पकड़ो तो आपको लगे कि हम शंकर के एक-एक अंग को पकड़ रहे हैं, उसको छू रहे हैं, उसकी बंदगी कर रहे हैं। तो ये आठ मूर्ति का समुच्चय रूप मेरे महेश है इसलिए उस महेश को केन्द्र में रखकर हम लोग तोतली बोली में गाये जा रहे हैं।

तो ऐसे महेश की बातें टूटी-फूटी बोली में पेश की जा रही थी। अब कुछ आपके प्रश्न जो शेष हैं वो बता दूं मैं आपको। प्रश्न है, 'बापू, बताइये, विकार कब तक रहेंगे?' जब तक हरिस्मरण नहीं बढ़ेगा। जितना हरिस्मरण बढ़ेगा विकार की मात्रा कम होगी। एक प्याला पूरा भरा है, उमें बर्फ़ डालो, तो बर्फ़ डालते ही कुछ पानी ऊपर से गिरने लगता है प्याले से, ओवर होने लगे। और ज्यादा डालो और निकले वैसे भीतर शीतल भाव से जितनी स्मरणशीलता बढ़ेगी इतने विकार बाहर निकलते जायेंगे। प्रतीक्षा करनी पड़ती है। हम थक जाते हैं। भक्ति मैं प्रतीक्षा बहुत बड़ा तप है, बहुत बड़ा तप है।

'बापू, पहली बार आपके सामने बैठकर कथा सुनने को मिली। मेरे मम्मी-पापा, मेरे घरवाले मुझे रामकथा सुनने से मना करते हैं। मेरे पढ़े-लिखे रिश्तेदार मेरा उपहास उड़ाते हैं। बापू, मैं क्या करूं?' उसको इतना ही कहना कि 'तुझमें रब दिखता है, यारा मैं क्या करूं?' उपहास लोग करते हैं, जो करें उसको कहो, 'तुझ में रब दिखता है, यारा मैं क्या करूं?' बस यही जवाब दो।

'कथा सुनकर आंखों में अब आंसू रुकते नहीं हैं, बापू, मैं क्या करूं?' रोया करो! गुजराती में एक गज़ल है कैलास पंडित की गज़ल। पहला कम्पोज़िशन शायद पद्मश्री पुरुषोत्तम उपाध्याय, फिर तो ओसमान ने भी गाया, कईयों ने गाया। शायर कहता हैं, अपनी पीड़ा को इधर-उधर गाओ मत, दूसरों को बताओ मत। खाली रोया करो। रोते रहो और प्रेम में जो हो, केवल देखा करो; हस्तक्षेप ना करो, देखते जाओ, देखते जाओ, देखते जाओ।

दर्दने गाया विना रोया करो।

प्रेममां जे थाय ते जोया करो।

पूरी गज़ल तो मुझे भी याद नहीं। बहुत सुंदर गज़ल है। लेकिन आखरी जहां शायर अपने आपको पेश करता है कि अब खुद को खुद के कांध पर ले लो, क्योंकि कब तक दूसरों की प्रतीक्षा करोगे कि मुझे अपने कंधे पर ले जाये।

ल्यो हवे कैलास खुद ने कांध पर,

राह सौनी क्यां सुधी जोया करो?

बाप! यदि आपको भगवत्कथा में आंखों से आंसू नहीं रुकते तो समझो, आप बहुत भाग्यवान होते जा रहे हैं। आंसू मुफ्त में नहीं आते साहब! उसका बहुत मूल्य चुकाना पड़ता है! और मूल्य वही चुका सकता है जो अमीर होता है। और अमीर वो है जो भीतरी सम्पदा से भरपूर होता है। इसलिए असली अमीर वजीर नहीं होता, फ़कीर होता है। जो फ़कीर होता है, वो ही असली अमीर होता है। मेरी व्यासपीठ तो एक ही बात कहती है, दो वस्तु का आश्रय करना, दो वस्तु दृढ़ रखना। एक, किसी बुद्धपुरुष का आश्रय और अपनी आंख में अश्रु, बस।

लोचन जलु रह लोचन कोना।

जैसें परम कृपन कर सोना।।

क्या गोस्वामीजी प्रेमियों की परिभाषा करते हैं! क्या प्रेमियों के बिगल-बिगल रूप का दर्शन कराते हैं! कोई 'मानस' में ज़ार-ज़ार रोता है, तो किसी की आंख में कोने में आंसू रुक जाते हैं। कोई नीचे मुंह करके रो लेता है। क्यों मैं ये शास्त्र गा रहा हूं? जिसकी समाज में युगों तक, शताब्दियों तक कोई गणना नहीं हुई, उसकी अब गणना हो। तो बस, अब पूरा करूं? आज की कथा विराम की ओर जा रही है। आज मेरा इरादा था मैं रामजन्म तक कथा को पहूंचाऊं, लेकिन मेरा इरादा थोड़ा काम करता है यार! एक बात पक्की है, मैं दिल की महेसूसी कहता हूं, मैं कथा नहीं चलाता, कथा मुझे चला रही है, बस।

शिव की एक मूर्ति का नाम है जिसको रुद्रमूर्ति कहते हैं। 'रुद्र' शब्द जरा भयवाचक लगता है। लेकिन भयवाचक नहीं है। साधक के इर्द-गिर्द कुछ अभद्र तत्त्व आने लगता है तब उसको महादेव की जो मूर्ति दिखती है वो रुद्र है ताकि अभद्र तत्त्व वो देखकर भाग जाये। साधक के लिए भय नहीं। शिव बड़े कृपालु हैं। हम जब साधना और बंदगी करेंगे तो चारों ओर से अभद्रता आएगी कि ये आदमी इस पंथ पर क्यों चढ़ा? शैतानतत्त्व को अच्छा नहीं लगता! उसी समय कोई ऐसे महेश के गले लगो कि उसका रुद्ररूप तुम्हें न दिखे, तुम्हे जो डराने आये हैं उसे दिखे और अभद्रता भाग जाये।

कथा–दर्शन

- सत्संग इसलिए है कि एक जागृति पैदा हो, भ्रममुक्ति हो।
- हम कथा के सत्संग से विवेक प्राप्त करते हैं।
- सत्संग से प्राप्त विवेक को बरकरार रखकर ये दुनिया एन्जोय करने जैसी है।
- श्रद्धा से मिलेगा ज्ञान, विश्वास से मिलेगी भक्ति।
- भक्ति में प्रतीक्षा बहुत बड़ा तप है।
- भक्ति का मार्ग प्रतीक्षा का है, बुद्धि का मार्ग परीक्षा का है।
- आत्मनिवेदन कर देना शिखर की भक्ति है।
- भजनानंदियों के लिए रात्रि ही भजन का काल माना गया है।
- भजनिक को आप मार सकते हैं, भजन को नहीं।
- साधु के लिए कोई विशेषण की जरूरत नहीं है।
- सहज साधुता सस्ता सौदा नहीं है, बहुत महंगा सौदा है।
- असली अमीर वज़ीर नहीं होता, फ़कीर होता है।
- बुद्धपुरुष आप पूछो उसका उत्तर नहीं देता, समाधान देता है।
- परम की शरण में आश्रित होने से बढ़िया कुछ नहीं है।
- निम्न की उपेक्षा मत करो लेकिन यदि पुकारना है तो महत्तम को पुकारो।
- जगत में किसी की भी निंदा होती है, कृपया वहां से बचें।
- समाधि या तो काम के बाण से टूटती है या तो आम की बानी से टूटती है।
- सत्य दूसरों को दिखाने से मजबूत नहीं होता, कमजोर होता है।
- सत्य अपने आप में सर्वसमर्थ है ये मत भूलें।
- जो आकाश के नीचे सोता है उसमें आकाश का औदार्य आने लगता है।
- उजाले को तो अपना उजाला होता है लेकिन अंधेरे को भी अपना एक उजाला होता है।

मानस-महेश : ६

महेशतत्त्व जगत की आत्मा है

भगवान महेश की महिमा 'मानस' के आधार पर हम गा रहे हैं। ऐसा एक संत-परंपरा का नियम है कि पहले दर्शन करो, खूब दर्शन करो। फिर अनुभव करो, खूब अनुभव करो। उसके पश्चात् गायन करो, फिर खूब गायन करो। जब तक अनुभव में प्रवेश न हो तब तक हमें और आपको दर्शन करते रहना चाहिए। चाहे वो शास्त्र हो, कोई भी मंज़र हो, कोई भी घटना हो, कोई भी पात्र हो, कोई भी प्रसंग हो। एक संत-परंपरा का ये नियम है। जिन्होंने गाया है तीसरे स्थान पर, उसने पहले बहुत दर्शन किया है। और दर्शन तब तक जारी रखियेगा जब तक अनुभव में प्रवेश न हो। अनुभव में प्रवेश करते समय आदमी की आंखें बंद होने लगती है, क्योंकि दर्शन का प्रदेश पूरा हुआ। फिर वो अंदर से देखता है। अनुभवपूर्ण दर्शन करता है और फिर खूब अनुभव जब अनुभूति में प्रवेश कर दे, उसके बाद गायन की महिमा है। आइये, इसी संत-परंपरा का शीलवंत निर्वाह करते हुए हम सब भगवान महेश का खूब दर्शन करें, खूब अनुभव करें और फिर झूम के गायन करें। ये तीन अवस्थाएं हैं संत-परंपरा की।

मैं महेश के बारे में बोलूं। आपकी व्यासपीठ के प्रति श्रद्धा है, आदर है, अहोभाव है इसलिए आप सुनते जायेंगें, अवश्य! सुनते हैं सालों से, सुनते रहेंगे; मेरा केवल ये दर्शन प्रस्तुत होता जाये, लेकिन बात तो तब बनेगी कि जिन्होंने दर्शन किया है, अनुभव किया है और फिर गुनगुनाया है महेश के बारे में ऐसी प्रतिभाओं का वक्तव्य क्या है? और ऐसी एक परम प्रतिभा है माँ पार्वती, जिन्होंने निरंतर महेश का दर्शन किया है। मन में कभी आशंका हुई, शिव से मतभेद भी हुआ, शिव की बातें मानी नहीं, कड़ा दंड भी पाया, अवश्य। फिर भी शिवदर्शन नहीं छूटा। आप क्या अंदाज़ करते हैं, सत्तासी हजार साल तक भगवान कैलास के भवन के बाहर ध्यान में बैठ गए तब भवानी सती क्या करती होगी? रोती रही होगी। कितना रोई होगी? चीखती हुई होगी! मेरे प्राण छूट जाए ये भी मांग करती रही होगी लेकिन इन सभी अवस्थाओं के दौरान मुझे लगता है, मेरी तलगाजरडी आंख कहना चाहती है कि सती ने सत्तासी हजार साल तक अपने महेश का दर्शन किया है; देखा है, बहुत देखा है। अब सत्तासी हजार साल तक दर्शन करते-करते संग तो छूटा है और दर्शन चल रहा है। क्योंकि शिव ने संग तो छोड़ दिया है लेकिन अब वो अंदर से बहुत सन्निकट होकर महसूस कर रही है। तब जाकर एक चौपाई भवानी ने गाई 'मानस' में। ये है महेश-महिमा। कोई कम समय नहीं लिया। सत्तासी हजार साल तक का दर्शन मुझे महसूस होता है। न खाया, न पीया, न सोया, देखती रही। भीतर अनवरत महसूस होता गया महादेव। फिर जाके एक पंक्ति में उसने गाया कि मेरी दृष्टि में महेश क्या है? हम तो बिना दर्शन बातें करते हैं! हम बिना अनुभव बोलते रहते हैं!

आइये, आज पार्वती के वचन से महेश का दर्शन करें। महेश को महसूस करें भवानी के ही शब्दों में। पहले प्रसंग आपके सामने मैं रख दूं। सती शिव की बात न मानकर ज़िद करके दक्ष के यज्ञ में जाती है और वहां भगवान शिव का अपमान यज्ञ मंडप में वो पाती हैं और फिर जाकर सती को रोष आता है उस समय की पंक्तियों पर जरा गौर फरमाएं। तो वहां पार्वती का महेश के बारे में अभिप्राय प्रगट होता है। भगवती मुखर हुई। हजारों ऋषि-मुनि बैठें हैं। तीन देवताओं को छोड़कर तैंतीस करोड़ बैठे हैं। अन्य सभासद भी इस यज्ञसभा में मौजूद हैं। और सबको सम्बोधन करती हुई जगदम्बा पार्वती बोली कि आज इस यज्ञसभा में जिन्होंने भगवान शंकर की निंदा कही और जिन्होंने सुनी वो सब दंड के भागी हैं। और वहां एक सूत्रपात हो गया। भवानी बोली, सुनो, तीन लोगों की जहां निंदा होती हो वहां एक ऐसी मर्यादा रखनी चाहिए। क्या ये तीन हैं? एक तो कोई संत, कोई फ़कीर, कोई पीर, कोई औलिया, कोई बुद्धपुरुष, जहां उसकी निंदा होती हो। दूसरे शिव-महेश-भगवान महादेव और तीसरे श्रीपति माने भगवान नारायण विष्णु। हरि, हर और ये हरिहर को एक करके हमें दिखानेवाला कोई संत, ये समन्वय सूत्र देनेवाला कोई बुद्धपुरुष, उसकी निंदा जहां भी होती हो, वहां एक ऐसी मर्यादा है,

ऐसा भवानी ने वक्तव्य दिया। मैं इतना ही कहकर आगे बढ़ूं कि कोई बुद्धपुरुष की निंदा होती हो, वहीं बचें। शिवनिंदा जहां से होती हो वहां से बचें और भगवान नारायण। इनमें पूरा जगत आ गया मेरी दृष्टि में। इसलिए जगत में किसी की भी निंदा होती है, कृपया वहां से बचें। व्यासपीठ का एक सूत्र है, निंदा न की जाये, निदान किया जाये। कोई भी बुद्धपुरुष कभी किसी की आलोचना करे भी तो ध्यान देना, ये निंदा नहीं है, निदान है। निदान जरूरी है और निदान करनेवालों को सामनेवाले के हित के लिए कभी कटु सत्य भी बोलना पड़ता है। यद्यपि मैं कटु सत्य का विरोधी हूं। सत्य भी कटु न किया जाये, ये मेरा व्यक्तिगत एहसास है। नहीं, नहीं, अमृत को विष न बनाया जाये। लाख सहन करना पड़े, कर लो! गुजराती का एक शे'र है-

तमे पण दुश्मनो चालो आ मारा स्नेहीओ साथे।
ए कब्रस्तानथी आगळ मने क्यां लई जवाना छे?

- जलन मातरी

चलो मेरे दुश्मन भी मेरे स्वजन के साथ क्योंकि आप सब मिलकर आखिर में तो कब्रस्तान तक ही तुम मुझे ले जाओगे, इससे आगे कहां ले जाओगे? मार-मार कर कितना मारोगे? तो निंदा न हो, निदान हो। और निदान भी तो ही करना, तुम डॉक्टर हो। और उस निदान के छाय में निंदा को प्रोत्साहित न किया जाये। निदान केवल चारागार कर सकता है, वैद्य करता है। और वैद्य कौन है?

सद्गुर बैद बचन बिस्वासा।
संजम यह न बिषय कै आसा।।

वैद्य है बुद्धपुरुष, सद्गुरु। वो ही तो निदान करने हक़दार है। क्योंकि मैं सोचता हूं कि व्यासपीठ के इस सूत्र के आधार पर कई लोग ऐसा करने लगे कि बापू ने कहा निदान, तो हम तो निदान कर रहे हैं! अरे, तू रहने दे! तू निदान नहीं कर रहा है, तू तेरा बचाव करके तेरे द्वेष का वमन कर रहा है! बचें मेरे भाई-बहन। जो युवा पीढ़ी सामने आ रही है उसके लिए तो मैं खास कहूंगा, ये जीवन बहुत मूल्यवान है, बहुत जीने जैसा है। फिर ऐसा मौका मिले न मिले अल्लाह जाने! इस समय यदि घटना न घटी तो कब घटेगी? बहुत बड़ा अवसर है पृथ्वी पर जीने का हम सबके लिए, बहुत प्यारा अवसर। क्यों हम किसी की निंदा करें? और निदान करने का हमें अधिकार नहीं। हम वैद्य नहीं है। तो जहां संत, नारायण और भगवान महादेव की निंदा होती है; और वहां जब सुनने की बाध्यता आ जाये, तुम्हें सुननी पड़े; तुमने सोचा नहीं कि इस सभा में ये होगा, आप तो गए और हो गई निंदा कभी हर की, कभी हरि की, कभी दोनों का समन्वय करनेवाले कोई बुद्धपुरुष की, ऐसे समय एक मर्यादा है, भवानी ने कहा, 'काटिअ तासु जीभ जो बसाई।' अब ये आधी पंक्ति के साथ भी व्यक्तिगत रूप में मेरा सहमत होना मुश्किल है। लेकिन बोलती है माँ, लिखा तुलसी ने, आया 'मानस' में, 'मानस' आया व्यासपीठ पर, व्यासपीठ पर मोरारिबापू बैठे! मुझे कुछ-कुछ कहना पड़ेगा। लेकिन मैं सहमत नहीं हूं। क्या लिखा है कि यदि कोई निंदा करे तो वहां एक ऐसी मर्यादा है, यदि तुम्हारा बस चले तो निंदक की जीभ काट दी जाये। मैं उस पक्ष में नहीं। ये जरा आक्रमकता है। एक निंदक की जीभ काटने से क्या निंदा रुक जाएगी? प्लस होगी। इसी को मुद्दा बनाकर लोग ओर निंदा करेंगे। लेकिन एक समय में लोगों को देहांत दंड दिया जाता था। आंखे निकाली जाती थी। जबान काटी जाती थी।

ईशु के समय में भी किसी ने पाप किया है तो पत्थर मार-मार कर सजा दी जाती थी। भगवान ईशु जिससे प्यार करते थे और कहते हैं, वो एक ऐसी नारी थी जिसकी कथा मैं कहने के लिए जा रहा हूं, 'मानस-गणिका।' एक ऐसी महिला थी ईशु के समय में, जिस पर सब पत्थर मारे जा रहे थे। ऐसी व्यवस्था थी एक ज़माने में। मार दो! हाथ हराम करे तो काट दो! जबान निंदा करे तो काट दो! कोई देशकाल में ये जरूरी रहा होगा। मुझे तो ये जरूरी लगता भी नहीं लेकिन रहा होगा। लेकिन इससे कोई समस्या का समाधान नहीं होनेवाला। वैर से वैर समता नहीं। अग्नि से घी डालने से अग्नि शांत नहीं होती, ओर भड़कती है। इस महिला को जब पत्थर मारे जा रहे हैं, तू ऐसी है, तू ऐसी है! और उसी समय भगवान ईशु निकलते हैं। सबके पत्थर रुक गए! कुछ लोगों ने सोचा कि बस, यहां ईशु की कसौटी है! बोलो, वो क्या निर्णय दें? हमारा धर्म कहता है, ऐसा करनेवाले को जाहिर में मारो। यदि ईशु मना करे तो ईशु धर्म विरुद्ध है तो एक इल्जाम ओर ईशु पर थोप दो! यदि वो कहे कि मारो, धर्म कहता है, तो वो ये काहे का पिता का बेटा है? करुणामूर्ति कैसे है? प्रेममूर्ति कैसे है? दोनों विरोधियों को मौका मिल गया ईशु को पकड़ने का। लेकिन जिसस ने तीसरी ही बात कही कि धर्म कहता है कि पाप

करनेवाली औरत को पत्थरों से पीटी जाए, मारो। मैं भी सहयोग करता हूं, मारो। लेकिन वो ही पत्थर मारे जिसने ज़िन्दगी में कभी पाप न किया हो। और कहते हैं, सब अपने-अपने पत्थर वहां रखकर निकल गए थे! केवल ईशु थे और वो महिला थी। लुढ़कती हुई ये महिला ईशु के चरण पकड़ लेती है।

धर्मों ने कम जुल्म नहीं किया है! शस्त्रों का युद्ध तो कभी न कभी रोका भी जाता है। ये शास्त्रों के गलत अर्थ के बाद जो युद्ध होते हैं, अल्लाह बचाये इससे! परमात्मा बचाये इससे! पूरी धरती रक्तरंजित रही इन नासमझी के कारण! लेकिन मनोज खंडेरिया, हमारा जूनागढ का बहुत एक अपने ढंग का शायर। ज्यादा न जीया। लेकिन हम ऐसी ही शिवरात्रि में जूनागढ में बैठे थे और हर वक्त मिलने आते थे तो हम उसको सुनते रहते थे। तो कहे, बापू, इस किस्से पर मैंने इस प्रकार का शे'र कहा है-

क्यारेय पाप जेवुं कशुं पण कर्युं नथी,
एथी ज थोडो आपणे पथ्थर उपाडिये?

उसका भाव कि बापू, मुझे लगता है, जिसस ने कहा कि जिसने कभी भी पाप न किया हो वो इस महिला को पत्थर मारे लेकिन मैं ये कहना चाहता हूं, संशोधन करना चाहता हूं कि मैंने पाप नहीं किया, इसलिए मैं निष्पाप हूं वो सिद्ध करने के लिए भी मैं किसी पर पत्थर नहीं मारूंगा। दुनिया भले मुझे पापी कहे। अपने आप को निष्पाप घोषित करने के लिए मैं पत्थर मारूं? ये ओर संशोधन था। मेरी मनोज खंडेरिया को अंजलि है ये।

तो जीभ काट देना, वध कर देना, सर कलम कर देना, शरीर छेद कर देना, क्या है ये सब? मैं तो इस पक्ष में कभी नहीं हो पाऊंगा। लेकिन मैं तुलसी के शब्दों को मिटा भी तो नहीं सकता क्योंकि लिखा उसने। अपनी ज़िम्मेदारी से लिखा होगा। मुझे क्या अधिकार कि मैं उसको काटूं? ज्यादा से ज्यादा व्याख्या न करूं, ओवरटेक कर के चला जाऊं इस पंक्ति से। और मैंने कभी आपके सामने इतनी चर्चा इतनी सालों में की भी नहीं है। ये जीभवाली बात मैं लाया ही नहीं। कभी शायद लाया हूं तो भी मैं बायपास निकल आया। मुझे क्या लेना देना? उस समय उसको लगा, कहा वो ज़िम्मेदारी तुलसी की। ये राजापुर की ज़िम्मेदारी है, तलगाजरडा की नहीं। लेकिन जब ऐसी बातें आती थी तो भविष्य की समस्याओं का समाधान व्यासपीठ पर बैठने के कारण तुम्हें कभी देना पड़ेगा; तो दादा पहले से सचेत कर देते थे। और दादा ने बताया, बेटा, यहां जबान काटने की बात नहीं, उसने जो दलीलें की है, दलील भी किसी की काटनी नहीं, लेकिन ऐसे मौके पर वो जो दलील करता है, उसकी दलील सविनय काटी जाए। उसी का नाम जबान काटना है। ये तलगाजरडी संशोधन है। क्योंकि पूरी दुनिया की जीभ काटोगे? उसको निरुत्तर कर दीजिए। उसको समाधन दे दीजिए सविनय कि तुम क्या-क्या बदतमीज़ी किये जा रहे हो? क्या नासमझी बरते रहे हो? क्यों ऐसे बोलते हो?

ये तुलसी वचन है कि जीभ काटो। मेरे गुरु का वचन है; विनय से उसकी बात को परिवर्तित करो, बस। तो गुरु वचन की महिमा ओर है। वो वचन वचन है बस।

काटिअ तासु जीभ जो बसाई।
श्रवन मूदि न त चलिअ पराई।।

अब इस पंक्ति जो उत्तर अर्धाली है इससे मैं पूरा सहमत हूं। जीभ काटने की बात में नहीं। लेकिन यदि मान लो आप लाख विनय करो तो भी कोई परिणाम न आये तो तुलसी फिर कहते हैं, कान मूंदकर वहीं से चले जाओ जहां निंदा होती है। मेरे श्रावक भाई-बहन, यदि संभव हो तो विनीत वचनों से उसकी विचारधारा को परिवर्तित किया जाये; उसकी जबान को परिवर्तित कर दी जाये। ये सम्भावना न हो तो कान मूंदकर वहीं से चले जाएं।

तो पार्वती कहती है, ऐसी मर्यादा है जहां निंदा होती हो वहां या तो ऐसे किया जाये अथवा तो आप कान मूंद कर इस सभा से निकल जाएं; रोष से नहीं, विनय से। अब जिस पार्वती ने सत्तासी हजार साल क्या, जन्म-जन्म जिस महेश को महसूस किया है उसके बारे में अब पार्वती कहती है, महेश क्या है? मोरारिबापू कहे वो इतना सबल नहीं हो सकता, माँ भवानी कहे वो परफेक्ट हो सकता है। 'महेश' शब्दप्रयोग किया पार्वती ने यहां-

जगदातमा महेसु पुरारी।
जगत जनक सब के हितकारी।।

मेरा महेश कैसा है? भवानी बोली। जन्म-जन्म का दर्शन था उसका। जन्म-जन्म का वो था उसका रिश्ता। इसलिए महसूस भी महादेव को बहुत किया और आज वो बयां कर

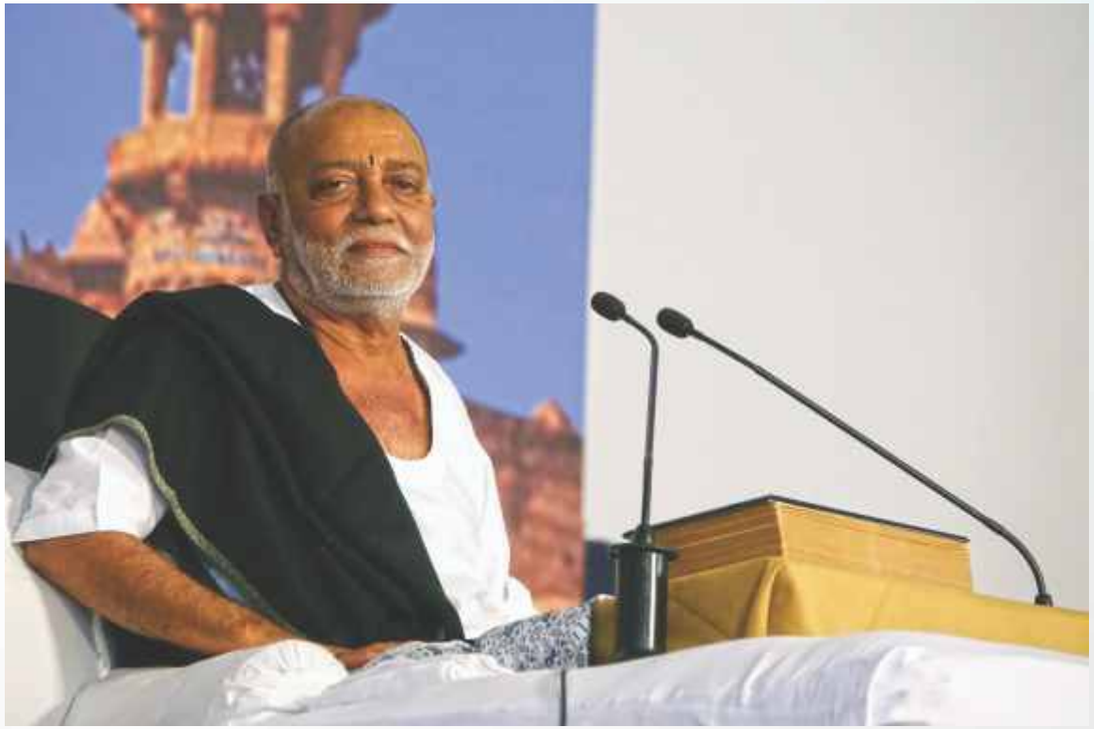

कर रही है कि जगदातमा; इस पूरी जगत की आत्मा कौन है? महेश। मैं नहीं कहता, शास्त्र कहता है। तो जिस महेश की महिमा इन दिनों में हम गा रहे हैं, सुन रहे हैं, वो महेश का परिचय जो भवानी दे रही है वो विशेष रूप से परिपक्व माना जाए।

पहला सूत्र, 'जगदातमा'; ये महेशतत्त्व जगत की आत्मा है। शंकराचार्य भगवान जगत की आत्मा नहीं कहते लेकिन आत्मा तो जरूर कहते हैं। 'आत्मा त्वं गिरिजा', गिरिजा क्या है? मति; गिरिजा वो मति है जिस मति ने अनुभव करके निर्णय कर लिया है। शिव है जगदातमा और अनुभव कर चुकी पार्वती बोल रही है गिरिजा मतिः, यहां मति माने जिसने बहुत अनुभव करके गांठ बांध ली है, परिपक्व निर्णय कर लिया। मति है अनुभूति, आत्मा है शिव। अनुभूति से ही पक्का निर्णय हो सकता है।

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।

किसी की औकात नहीं है ऐसा वक्तव्य देना! ये तो आदि जगद्गुरु ही दे सकता है, जो अद्वैत का बादशाह है। 'जगदातमा महेसु पुरारी।' पार्वती कहती है, मेरा महेश जगत की आत्मा है। जगत तीन हैं-स्थूल, सूक्ष्म, कारण। ये पूरा वेदांत है, यस। तुलसी ने कोई विद्या नहीं छोड़ी है। जैसे शरीर तीन होते हैं-स्थूल, जो बोडी आपका, मेरा ऊपर से दिखाता है, हाथ-पैर, नाक सब दिखता है, ये स्थूल शरीर है। दूसरा एक सूक्ष्म शरीर होता है जो एक अंदर है, जो दिखता नहीं, अदृश्य है। और तीसरा है कारण शरीर। और कहा जाता है, पिंडे ब्रह्मांडे, जो पिंड को लागू होता है वो ब्रह्मांड को लागू पड़ता है; जो ब्रह्मांड को लागू होता है वो पिंड को भी लागू पड़ता है। तो शरीर तीन प्रकार का। ये स्थूल, ये मेरा शरीर, ये आपका शरीर ये स्थूल शरीर है, नष्ट हो जाएगा, पंचभूत में विलीन हो जाएगा। पंचभूत का संयोग ही ये देह है। पंचतत्त्व का ये शरीर बना है, ये स्थूल शरीर है। लेकिन सभी स्थूलता के अंदर उसका छिपा हुआ जो एक सृजक जो दिखता नहीं।

तो सूक्ष्म जो देह है पिंड का और ब्रह्मांड का। जगत जो सूक्ष्म है उसमें हरि अव्यक्त है, अदृश्य है। उसको प्रकट किया जा सकता है लेकिन मथना जरूरी है। तभी वो नवनीत निकलता है। जो ज्ञानदीप का वर्णन 'उत्तरकांड' में आप सब जानते हैं, वहां ये प्रक्रिया मौजूद है। तो जो दिखता है वो स्थूल जगत। नहीं दिखता वो सूक्ष्म जगत और ये कारण जगत। जैसे कारण शरीर वैसे कारण जगत। वो उसका कोई न कोई निमित्त कारण है। और मैंने ये एक दिन वेदांत का वक्तव्य आपके सामने पेश किया है कि उपादान कारण एक होता है, निमित्त कारण कई होते हैं। जैसे कि मिट्टी घड़ा बनाने में उपादान कारण है लेकिन घड़ा बनाने के लिए चाक, कुम्हार, ये लकडी का डंडा या पानी का वो, ये सब अपनी ऊंगलियां, ये सब वो निमित्त कारण है। तो एक ये कारण शरीर। इन तीनों जगत की आत्मा मेरा महेश है। यदि महेश नहीं तो कारण जगत नहीं। यदि महेश नहीं तो सूक्ष्म जगत नहीं। यदि महेश नहीं तो स्थूल जगत भी नहीं।

पार्वती कहती है, मेरा महेश कौन है? ये जगत की आत्मा है। ये महेश है। ये पुरारि के दो अर्थ है। ये तो कविता के बंधारण को ठीक रखने के लिए त्रिपुरारि के बदले पुरारी लिख दिया। मूल तो त्रिपुरारि। वो त्रिपुरारि राक्षस तीनों पुर में धूमता था, स्वर्ग, मृत्यु, पाताल। पाताल में जब मारने जाए देवता लोग तो पृथ्वीपुर में आ जाता था। पृथ्वी में मारने जाये तो स्वर्गपुर में चला जाता था। वहां देवता मारने जाये तो फिर पाताल। तीनों में वो गति करता था त्रिपुर असुर। उसका निधन एक ही तरीके से होता है कि एक साथ जो त्रिपुर पर प्रहार करे तो ही वो मरे। पाताल में जाकर मारो तो छटक जाएगा। पृथ्वी पर मारो तो ओर ऊपर जाएगा। वहां मारो तो ओर गहराई में! एक साथ तीनों पर कोई एटेक कर दे तो ही मरे। और वो भगवान शंकर ने किया। तब से त्रिपुरारि हो गए। त्रिपुरारि का संक्षिप्त रूप है पुरारि।

पुर का अर्थ होता है नगर। जैसे अवधपुर, काशीपुर, लंकापुरी, अवधपुरी, मथुरापुरी, जगन्नाथपुरी, ये पुर। तो शंकर पुर के अरि है। ये त्रिपुरासुर के अरि है। कोई नगर के दुश्मन नहीं है। ये जगन्नाथपुरी के दुश्मन नहीं है। ये द्वारिकापुरी के दुश्मन नहीं है। ये मथुरापुरी के दुश्मन नहीं है। ये लंकापुरी के भी दुश्मन नहीं है। तो फिर पुरारि क्यों लिख दिया? यही समझना कि वो त्रिपुरासुर के अरि। फिर भी मेरा शंकर दुश्मन का भी अरि हो ये मुझे रास नहीं आता। दुश्मन उसको दुश्मन माने बात ओर है। मेरा महादेव करुणामूर्ति है; वो दुश्मन को भी अरि नहीं समझ सकता। तो पुरारी का मतलब क्या है? पुरारि का मतलब है, नगर में जिसको रहना रास नहीं आता। ये नगर का वासी नहीं है। ये बाबा फ़कीरों का फ़कीर है। अलमस्तों का अलम। कभी कैलास में। काशी में आकर तो उसकी मज़बूरी है यार! जब भंडार भर जाता है तो मुक्ति बांटने के आ जाते हैं। बाकी ये पुरारि है, ये भीड़ का दुश्मन है। इसी अर्थ में ये वनखंडी है। अकेले रहने का आदी है। जिस आदमी को साधना करते-करते भीड़ पसंद हो तो समझना कि अभी बहुत कच्चा है। या तो भीड़ में अकेले रहना गुरुकृपा से सीख जाये तो बात ओर है। बाकी भीड़ ये पहुंचनेवाले फ़कीरों के लिए रास नहीं आती। भीड़ों से उसकी कोई उपेक्षा नहीं होती।

तो पार्वती कहती है, महेश कौन है? जगत की आत्मा है। महेश कौन है? जो भीड़ से मुक्त है। भीड़ में रहते हुए अकेला है। अकेले में प्रभुनाम की भीड़ को संजोय हुए है। ये है पार्वती का महेश। जो दर्शन, अनुभव, उसके बाद निकला वक्तव्य है। पार्वती कहती है, मैं माँ हूं, जानती हूं कि दुनिया का बाप ये है। माँ ही जानती है कि बच्चे का बाप कौन है? ये जगतरूपी संतान का पिता कौन है वो माँ ही कह सकती है। संसारी बाप दो बेटे, पांच बेटे, पांच संतान, जितनी संतान हो उसके हितकारी होते हैं। ये तो जगत का बाप, इसलिए सबके हितकारी।

ये है 'मानस-महेश।' ऐसे भगवान महेश शादी के बाद एक बार प्रसन्नचित्त सहजासन में कैलास के वेद-विदित वटवृक्ष की छांव मैं बैठे हैं। गोस्वामीजी वहां कल्पतरु की छाया का संकेत नहीं करते हैं। वो कहते हैं, वेद विदित वटवृक्ष है, उसके नीचे बैठे हैं महादेव। कैलास और वट क्या है? विश्वास। और मेरे भाई-बहन, जब भी भरोसा आये, विश्वास ही कल्पतरु है, बाकी सब एरंड के वृक्ष हैं। जिसको पक्का विश्वास हो गया वो कल्पतरु की छाया में बैठा है। भरोसा ये कल्पतरु। भरोसा क्या न करे? हम हिल जाते हैं।

आज मेरे महादेव स्वयं वटवृक्ष भी विश्वास का एक कल्पतरु है, वहां प्रसन्न बैठे हैं। तो भवानी अवसर देखकर के भगवान महेश के पास आती है। वाम भाग में विराजित हुई। प्रसन्नचित्त महादेव को देखकर भवानी कहती है, प्रभु! गत जन्म में मैं दक्षकन्या थी सती के रूप में। रामदर्शन करने के बाद मैंने राम पर संदेह किया। मैं परीक्षा करने गई। पकड़ी गई। आपने मेरा त्याग किया। सत्तासी हजार साल तक मैं अकेली रही। उसके बाद आपके सन्मुख हुई। फिर भी पकी नहीं थी। पिता के यज्ञ में गई और वहां आपका अपमान और निंदा सह न पाने के कारण मैं जलकर भस्म हुई। और मैंने दूसरा जन्म लिया हिमालय की पुत्री के रूप में। सतीपने का जो बौद्धिक अहंकार था वो मेरा जल गया लेकिन फिर भी संदेह है कि क्या राम ब्रह्म है कि मनुष्य? मुझे रामकथा सुनाकर मेरी भ्रान्ति का नाश करो। ध्यान रस में डूबते-डूबते भगवान बाहर आ गए और कहा, हे भवानी, आप बड़भागी हैं, धन्यवाद के पात्र हैं। आपने ऐसी रामकथा पूछी जो समस्त लोक को पावन करनेवाली गंगा है।

भगवान शंकर कहते हैं, देवी! निराकार ब्रह्म साकार क्यों होता है? निराकार ब्रह्म नराकार क्यों होता है? निर्गुण सगुण क्यों होता है? दुनिया का बाप किसी का बेटा क्यों होता है? जो स्वयं अजन्मा है वो किसी की कोख से जन्म क्यों लेता है? उनके कई कारण हैं और कोई कारण है भी नहीं। रामजन्म के कई कारण, इनमें कुछ विशेष कारण। एक कारण है, जय-विजय। वैकुंठ के द्वार पर सनत्कुमारों ने श्राप दिया। दूसरा कारण सतीवृंदा। तीसरा कारण नारद ने प्रभु को श्राप दिया, आपको मनुष्य बनना होगा। चौथा कारण मनु-शतरूपा ने नैमिषारण्य में तप करके परमात्मा से मांग लिया कि हमारे अगले जन्म में हमारे घर आप जैसा पुत्र हो। हरि ने कहा, मेरे समान जगत में कोई है हीं नहीं, मैं अद्वितीय हूं लेकिन हां बोल दी है तो मैं ही आपके घर पुत्र बनकर आऊंगा। पांचवां और अंतिम कारण राजा प्रतापभानु को ब्राह्मण देवताओं ने श्राप दिया। प्रतापभानु रावण हुआ। अरिमर्दन कुम्भकर्ण, उसका एक मंत्री विभीषण हुआ।

'मानस' में रामजन्म की कथा से पूर्व रावणजन्म की कथा लिखी है। पहले निशिचर वंश की कथा, फिर सूर्यवंश की कथा। रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण ने तप किया। दुर्गम वरदान प्राप्त किये। पूरी दुनिया भ्रष्टाचार से भर गई। धरती अकुला गई रावण के त्रास से। गाय का रूप लेकर धरती ऋषिमुनियों के पास गई, मुझे बचाओ। ऋषिमुनियों ने कहा, हम क्या करें? रावण आता है तो हम भयभीत हो जाते हैं, हम यज्ञ नहीं कर पाते! सब देवताओं के पास गए। देवताओं ने कहा, हम अपने लोक में सलामत नहीं हैं। हम सब मिलकर ब्रह्मा के पास जाए और पितामह को प्रार्थना करें कि महाराज, आपकी बनाई सृष्टि बहुत विपत्ति में है, कोई उपाय बताओ। तो ऋषि-मुनि, देवता ये सब ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा को अपनी वेदना सुनाई। ब्रह्मा ने सबको कहा कि परमात्मा ही हमारी समस्या का समाधान दे सकता है। पूरा अस्तित्व प्रभु को पुकार रहा है। आकाशवाणी हुई, देवगण, ऋषिगण, मुनिगण, धरित्री, डरो नहीं। कई कारण हैं भी और कोई कारण नहीं है। मैं अयोध्या में रघुकुल में प्रकट होऊंगा। धैर्य धारण करो।

गोस्वामीजी हमको लिए चलते हैं श्रीधाम अयोध्या जहां प्रभु का प्राकट्य होनेवाला है। त्रेतायुग, महाराज दशरथजी का रघुवंश का शासन। वर्तमान सम्राट अवधपति दशरथ धर्मधुरंधर है, गुणनिधि है, ज्ञानी है। सारंगपाणि की भक्ति भी करते हैं। कौशल्या आदि प्रिय रानियां है। पूरे परिवार का आचरण पवित्र है। सभी रानियां पति के अनुकूल जीवन जीती हैं और राजा और रानियां हरिचरण में समर्पित हैं। ये व्यासपीठ कायम कहती रही कि हमारे गृहस्थ जीवन में यदि राम जैसा पुत्र चाहते हो तो हमें क्या करना चाहिए राम को पाने के लिए उसकी एक छोटी फोर्म्यूला बता दी है। केवल तीन सूत्र। एक, महाराज दशरथ अपनी रानियों को प्यार करते हैं। और रानियां प्यार करनेवाले पति को बिल्कुल अनुकूल जीवन जी रही हैं; दूसरा सूत्र। और तीसरा सूत्र, दोनों मिलकर, प्यार और

पार्वती कहती है, महेश कौन है? जगत की आत्मा है। महेश कौन है? जो भीड़ से मुक्त है। भीड़ में रहते हुए अकेला है। ये है पार्वती का महेश। जो दर्शन, अनुभव, उसके बाद निकला वक्तव्य है। पार्वती कहती है, मैं माँ हूं, जानती हूं कि दुनिया का बाप ये है। माँ ही जानती है कि बच्चे का बाप कौन है? ये जगतरूपी संतान का पिता कौन है वो माँ ही कह सकती है। संसारी बाप दो बेटे, पांच बेटे, पांच संतान, जितनी संतान हो उसके हितकारी होते हैं। ये तो जगत का बाप, इसलिए सबके हितकारी।

आदर दोनों मिलकर के भगवान की-परमतत्त्व की भक्ति करते हैं।

महाराज दशरथजी को एक ग्लानि है, मुझे पुत्र नहीं। पीड़ा किसको कहूं? दशरथजी गुरुद्वार गए, महाराज! मेरे भाग में पुत्र सुख नहीं है क्या? वशिष्ठजी ने कहा, राजन्! थोड़ा धैर्य धारण करो। एक नहीं, चार पुत्रों के पिता हो जाओगे। लेकिन पुत्र कामेष्टि यज्ञ करना होगा। शृंगीऋषि को बुलाया गया। पुत्र कामेष्टि यज्ञ का आयोजन हुआ। भगति सहित आहुतियां डाली गई। आखिरी आहुति यज्ञकुंड में डाली ही, हाथ में प्रसाद का चरु लिए यज्ञपुरुष स्वयं अग्नि के रूप में यज्ञकुंड से बाहर आये। प्रसाद की खीर वशिष्ठजी के हाथ में यज्ञपुरुष दे देता है। यज्ञपुरुष ने कहा, हे वशिष्ठजी, आपका कार्य सफल हुआ। ये प्रसाद राजा को दीजिए और राजा को कहिये अपनी रानियों को जथा जोग वितरण कर दें। राजा ने अपनी प्रिय रानियों को बुलाया और प्रसाद बांटा। तीनों रानियों ने प्रसाद प्राप्त किया। रानियां सगर्भा स्थिति का अनुभव करने लगी। यहां गर्भ में हरि पधारे। पूरे जगत में सुख-समृद्धि छाने लगी। हरि प्रकटने की बेला आई। योग, लगन, ग्रह, वार, तिथि अनुकूल हो गया। चर-अचर पूरे संसार में हर्ष और प्रसन्नता प्रगट होने लगी क्योंकि राम का जन्म सुख की जड़े हैं। त्रेतायुग है। चैत्र मास है। शुक्ल पक्ष है। नौमी तिथि है। भौम वासर है। मध्याह्न का सूर्य हुआ है। नदियों में अमृत बहने लगा। मंद सुगंध शीतल वायु बहने लगी। पाताल के नागदेवता, पृथ्वी के ब्रह्मदेवता और स्वर्ग के सूर्यदेवता भगवान की गर्भस्तुति का गायन करने लगे। और जगनिवास पूरे जगत में जिसका निवास है, पूरा जगत जिसमें निवास कर रहा है ऐसा ब्रह्म, ऐसा निराकार, निर्गुण, ईश्वर, परमात्मा, प्रभु, परमतत्त्व जो नाम देना चाहो, मुबारक! माँ कौशल्या के भवन में प्रकाश होने लगा! प्रकाश आकार धारण करने लगा और जब माँ ने ठीक से देखा ही तो देखा कि कोई चतुर्भुजरूप में मेरे भवन में प्रकट हुआ है। और गोस्वामीजी ने घोषणा कर दी-

भए प्रगट कृपाला दिनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनिमन हारी अद्‌भुत रूप विचारी।।

श्री हरि प्रकट हुए। माँ ने कहा, मैं आपकी स्तुति कैसे करूं? माँ को ज्ञान हुआ। प्रभु प्रसन्न हुए। लेकिन मैंने संतों से सुना कि उसके बाद माँ कौशल्या अपना मुख फेर लेती है। हरि ने कहा, माँ, मैं आया और तू मुंह फेर लेती है? बोले, आप आये, आपका स्वागत है लेकिन क्षमा करें, गत जन्म में जब हमने तप करके आपसे मांगा, तब यही मांगा था कि आप हमारे घर पुत्र बनकर आओगे, आज बाप बनकर आये हो! हमने मांगा था नररूप में आओ, आप नारायणरूप में आये हो। आप मनुष्य हो जाओ। भगवान ने कहा, तू सीखा कि कैसे मनुष्य हुआ जाये? बोले, पहले तो चार हाथ के दो हाथ कर दो। मुझे बहुत आनंद आता है हर वक्त कि धन्य है मेरे भारत की एक माता ईश्वर को मनुष्य बनने का पाठ सीखा रही है! भगवान ने दो हाथ कर दिए। माँ को पूछा, अब मनुष्य? बोले, अब मनुष्य लगते हो। लेकिन इतने बड़े लगते हो! बच्चा जन्म लेता है तो बिलकुल छोटा होता है। आप छोटे हो जाओ। भगवान छोटे हो गए। बिलकुल नवजात शिशु की तरह भगवान छोटे हो गए। माँ से पूछा, अब माँ? बोले, हां, बिलकुल बालक बन गए हो लेकिन बोलते हो बड़ों की तरह! बच्चा बोलेगा नहीं, रोयेगा। भगवान बोले, मुझ पर कौन नौबत आई मैं रोऊं? मांने कहा, आप पर नहीं आई, तेरी बनाई दुनिया पर नौबत आई है। माँ की बात सुनकर परमात्मा-परब्रह्म बालक बनकर माँ के अंक में आ गए और रोने लगे। अब तुलसी ने उद्‌धोषणा कर दी कि राम का प्राकट्य हुआ है।

बालक के रुदन की आवाज़ सुनकर भ्रम के साथ ओर रानियां दौड़ आई महल में कि माँ ने कोई प्रसव पीड़ा की शिकायत नहीं की और सीधा बालक रो रहा है! महाराज दशरथजी के कानों पर बधाई गई कि महाराज, बधाई हो! बधाई हो। महाराज ने सुना कि पुत्र जन्म हुआ। पहली अनुभूति ब्रह्मानंद की हुई क्योंकि ब्रह्म आया है। लेकिन दूसरी अनुभूति मेरे घर ब्रह्म आया? कौन निर्णय करेगा? जल्दी वशिष्ठजी को बुलाओ। वशिष्ठजी आये और कहा कि महाराज, आपके घर परमतत्त्व का अवतरण हुआ है। उसी समय परमानंद में डूबे महाराज कहने लगे, बाजेवालों को बुलाइये, उत्सव मनाइये, बधाइयां गवाइये! और पूरी अयोध्या में राम प्राकट्य की बधाई और उत्सव शुरू हुआ। ग्वालियर की इस व्यासपीठ से महाशिवरात्रि के पावन पर्व की ओर हम जा रहे हैं, ऐसे पावन मौके पर आप सभी को रामजन्म की बधाई हो, बधाई हो!

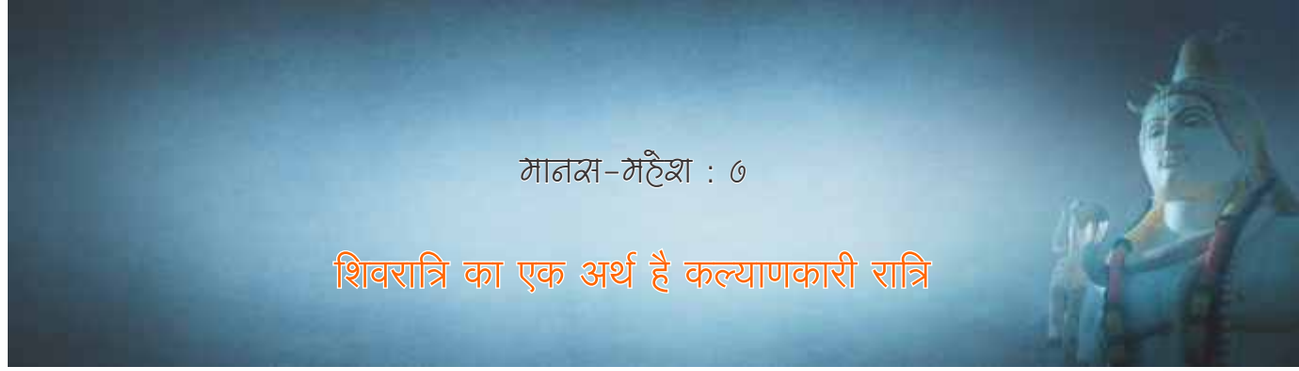

मानस-महेश : ७

शिवरात्रि का एक अर्थ है कल्याणकारी रात्रि

आज महाशिवरात्रि का परम दिन है। आप सभी को, पूरे संसार को व्यासपीठ से महाशिवरात्रि की बहुत-बहुत बधाई हो, बधाई हो, बधाई हो। भूरिशः शुभकामना। आज त्रिभुवनेश्व का दिन है। जो त्रिभुवन का ईश्वर है, उसी का आज दिन है। हम अवश्य प्रकाश प्रेमी हैं, होना चाहिए। हमें अंधेरों से उजाले की ओर ले चलो, ऐसी सामान्य हम सबकी मांग है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय।' ये औपनिषदी मांग भी है और ये सही है। लेकिन रात्रि की महिमा को प्लीज़, कम मत आंकना। रात्रि की गज़ब महिमा है! ये संसार की रात्रि, हम जैसे जीवों की रात्रि भी कुछ विशेषताएं लिए हुए हैं। कुछ उसका दर्शन करें। फिर महसूस करें। फिर गाएं। कितनी-कितनी रात्रियां हमने बिता दी! किसीने बीस साल, किसीने तीस साल! मोरारिबापू ने इतने साल रात्रियां बिता दी। लेकिन उस पर चिंतन कम हुआ क्योंकि हम सोये ही रहे! कुछ विशेष रूप में रात्रि की महिमा समझें।

पहली विशेषता ये हैं कि रात्रि का समय, रात्रि का काल प्रकृति के सभी तत्त्वों को विश्राम देता है। आप कभी कोई गहन रात को, मैं समय भी आपको निर्देश करना चाहूंगा, दो और तीन के बीच कोई नदी के तट पर रात में बैठ जाओ तो आपको महसूस होगा कि नदी भी अपनी गति को बहुत धीमे करके बह रही है। क्योंकि रात्रि के काल का ये विशेष असर है कि प्रकृति के सभी तत्त्व विश्राम करते हैं, शांत होते हैं। दिन में पेड़-पौधें जितने झूलते हैं, हां! हवा के कारण झूमते हैं, झूलते हैं लेकिन रात्रि में प्रकृति का एक जलतत्त्व, प्रकृति का दूसरा वायुतत्त्व वो भी मंथर गति से चलता है। इसलिए वृक्ष, लता-पता भी अपना हिलना-झुलना छोड़कर कुछ विश्राम करते हैं। प्रकृति का अग्नितत्त्व जो संतप्त करता है, उद्दीप्त करता है वो भी रात्रि के समय सितारों और चांद में परिवर्तित होकर ये तेजतत्त्व, अग्नितत्त्व शैत्य की वर्षा करता है। ये रात्रि में होता है। कोई रात्रि में बैठकर के गगन की ओर देखे, गगन में जाकर खेले, गगन को एहसास करे।

मेरा बहुत पुराना वक्तव्य है कि देहातों में लोग अपनी चार पाई पर खुले आंगन में सोया करते थे। जो आकाश के नीचे सोता है उसमें आकाश का औदार्य आने लगता है। आकाश जैसा आदमी विशाल होने लगता है। आज भी देहातों में देखिये, वस्तु का अभाव होगा लेकिन उनकी भावना बड़ी उदार मात्रा में बहुत रहती है। आसमां भी अपनी प्रसन्नता रात्रि में ज्यादा बिखैरता है। ईश्वर को इसलिए हमने आकाश के साथ तौला है, आकाश के रूप में ईश्वरत्व ज्यादा जीव के निकट आता है। वो भी शांत धीर-गंभीर मुद्रा में। तो तेज यानी अग्नि, वायु, जल, आसमां और पृथ्वी, जमीं तत्त्व भी। विज्ञान की बातें छोड़िये; अध्यात्म की बातें ध्यान में रखें। विज्ञान तो कहता है कि पृथ्वी घूमती रहती है। और ये मानना चाहिए। लेकिन अध्यात्म में धरती की गति भी रात्रि में शांत। सब इबादत में लग जाते हैं। आसमां, अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी सब। तो रात्रि की विशेषता है कि प्रकृति के सभी विभाव को वो विश्राम प्रदान करने लगती है और ये प्रकृति के बहुत पावन तत्त्व होने के नाते ये सब इबादत करते हैं। फिर जैसे-जैसे सुबह होने को होता है तब नदी भी नहाकर तेज गति से चलने लगती है। आसमां भी नहा-धोकर के सुबह अपनी ड्यूटी बजाने के लिए आ जाता है। सूर्य भी डूबकर के, नहा-धोकर के, केसरी जल में स्नान करके सुबह में उदित होने लगता है। वायु भी एकदम ताजा-तरोजा होकर विशेष पवित्रता लेकर बहने लगता है। और पृथ्वी भी अपने कर्म पर लग जाती है, अपने चक्रावे में चलने लगती है। तो रात्रि का एक विशेष असर ये है प्रकृतिमात्र को विश्राम और विराम देना।

दूसरा; रात्रि में मानवी का मन दिन की मात्रा में थोड़ा ज्यादा शांत होता है, मात्रा में। क्योंकि मन का शांत होना ही हमें नींद प्रदान करता है। मनोविज्ञान कहता है कि जिसका मन मात्रा में शांत नहीं होता उसको निद्रा कम आती है। भजनानंदी की बात छोड़िए, योगियों की बात छोड़िए। ये अपवाद है जगत के। सर्वसाधारण व्यक्ति के रूप में हम अपनी अनुभूति यदि देखें तो रात्रि के समय मन शांत होता है मात्रा में।

रात्रि की तीसरी विशेषता है, यदि रात्रि के चौथे प्रहर में कोई सपना आये तो एक किसी विशेष घटना का ये संकेत होता है। ये रात्रि की विशेषता है। कई धर्मों में, कई माताओं को, कई पुरुषों को चौथे प्रहर में विशेष ख्वाब आये उसने बहुत बड़े संकेत प्रदान किये हैं। ये रात्रि के चौथे प्रहर में होता है। ये उसकी विशेषता है। रात्रि की चौथी विशेषता है चांद और सितारों का दर्शन। यद्यपि कृष्ण पक्ष की रात्रि है तो चांद न दिखे लेकिन सितारें तो दीखते हैं, ज्यादा चमकते हैं। 'मानस' के आधार पर कहूं तो रात्रि में जो आकाश में अंधेरी रात्रि में चांद भी है थोड़ा मान लो और सितारे भी हैं तो 'मानस' के संकेत पर वो रात्रि ही हमें रामनाम और परमात्मा के और अनेक नामों का स्मरण कराते हैं।

राका रजनी भगति तव राम नाम सोई सोम।

अपर नाम उडगन बिमल बसहुँ भगत उर ब्योम।।

गोस्वामीजी 'अरण्यकांड' में कहते हैं, अनेक सितारों हमें कौन संदेश दे रहा है? ये चंद्र हमें किस संदेश दे रहा है? हरिनाम और हरिनाम से जुड़े उनके अवांतर कई नाम, ये रात्रि में हमें विशेष सूचना देता है। रात्रि का काल सृष्टि के विस्तार का काल है। कुदरत और विवेक और धर्म मर्यादा के अनुसार रात्रि सृष्टि विकास का कार्यकाल माना गया। नरसिंह मेहता का एक पद है, 'रात रहे ज्याहरे पाछली खटघड़ी साधु पुरुषे सूई न रहेवुं।' अथवा तो 'आपणे आपणा धर्म संभाळवा।' उसमें कहते हैं नरसिंह मेहता, 'पहेले पहोरे सौ कोई जागे, बीजे पहोरे भोगी रे।' रात के चार प्रहर, इसमें पहले प्रहर तीन घंटे जो गिनती हो काल के अनुसार। इसमें तो सब कोई जागता है लेकिन दूसरे प्रहर में भोगी लोग जागते हैं। मेरा संकेत समझिये, रात्रि सृष्टि विकास का काल है। इसमें विहारी लोग जागते हैं। 'त्रीजे प्रहरे तस्कर जागे।' तीसरे प्रहर में चोर जागते हैं क्योंकि उसको चोरी करनी है। 'चोथे प्रहर कोई योगी रे।' 'रात रहे ज्याहरे पाछली खटघड़ी, साधु पुरुषे सूई न रहेवुं।' साधु को सोना नहीं। साधु को जब छः पिछली घडी हो तब साधु सोये ना। तो करे क्या? 'परहरी समरवा श्री हरि, एक तुं, एक तुं, एम कहेवुं।'

तो रात्रि सृष्टि विकास का काल माना गया है। ये भी उसकी विशेषता है। रात्रि एक ऐसा समय का काल है जिसमें, जो चौबीस घंटे मूर्छित है, मूढ़ता मैं है; ना जाने किन-किन ख्यालों में हैं लेकिन रात्रि में जिसकी जीवनी

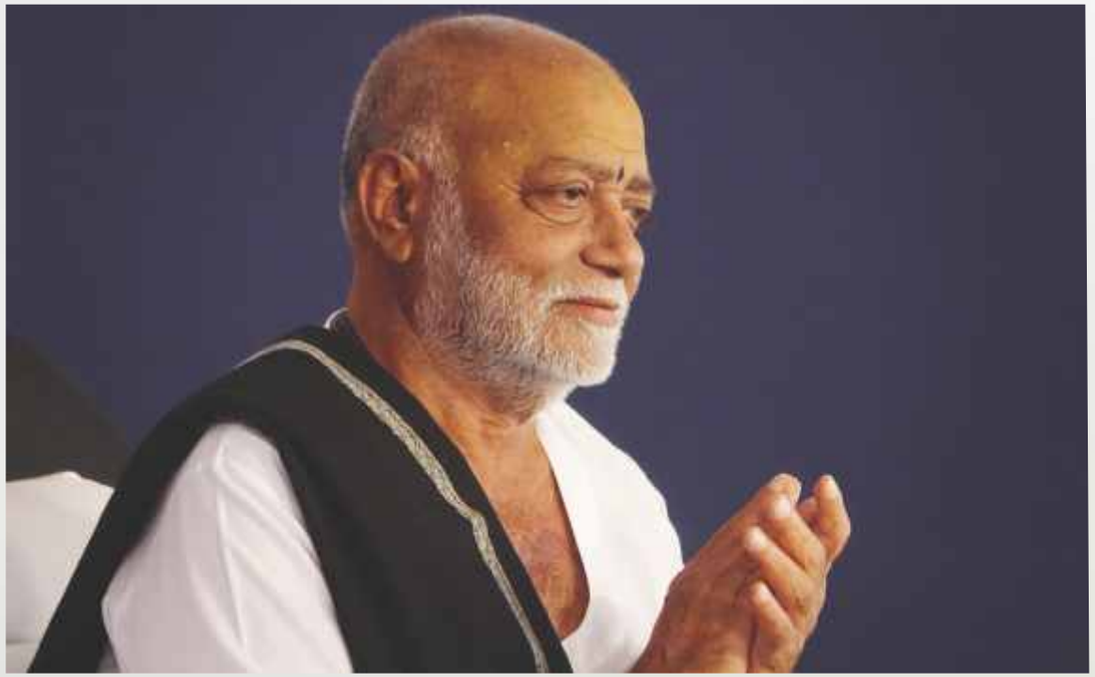

बुराइयों से भरी है वो लोग भी जागते हैं। शराबी, क्रिया तो उसकी अच्छी नहीं लेकिन रात में जागता है। चोर, उसका कर्म अच्छा नहीं लेकिन रात में जागता है। निंदक, कर्म अच्छा नहीं लेकिन रात में जागता है। द्वेषी व्यक्ति अपनी चारपाई में पड़ा-पड़ा जागता ही रहता है कि वो मेरे आगे क्यों निकल गया, वो मेरे आगे क्यों निकल गया? बुराईवाले लोगों को भी रात जगाये रखती है। ये भी एक स्वीकार योग्य है कि अस्वीकार योग्य वो सोचे बिना रात की विशेषता समझिये। और रात्रि की एक ओर विशेषता है। उसमें अंधेरे का एक अपना विशिष्ट उजाला प्रकट होता है। अज्ञानता को भी अपना ज्ञान होता है। और जिस अज्ञानता को अपना ज्ञान हो जाता है उसको बुद्ध होने में देर नहीं लगती। उजाले को भी एक अंधेरे का वैभव होता है। वो रात्रि प्रदान कर सकती हैं। ये रात्रि की बहुमूल्य भेंट है। आज-कल तो देश-काल बदल गया। सबका संविधान बदल गया। युद्ध नियम की ऐसी-तैसी हो गई लेकिन 'महाभारत' काल को आप देखें तो जैसे सूरज डूबता है, युद्ध विराम हो जाता था। रात में कोई किसी पर प्रहार नहीं करता था। 'महाभारत' तो वहां तक हमें लिए चलता है, पूरा दिन आमने-सामने जो खून बहा रहे थे वो भी सूर्यास्त के बाद जब रात शुरू होती है तब एक-दूसरे के शिबिर में जाकर खबर पूछते थे कि आपकी तबियत कैसी है? रात्रि एकमात्र ऐसी है जो युद्ध को विराम देती है और बुद्ध की शुरूआत करती है। एक वो रात याद करो। बुद्ध दिन में नहीं निकले थे, वो भी रात थी जब वो यशोधरा के पास से महाभिनिष्क्रमण के निकले। तो पहले के जमाने की युद्धसंहिता जो थी उसमें रात में युद्ध विराम और ऐसी कई रातें है जिस रात में बुद्धत्व का निर्माण हुआ है। तो ये रात्रि की अपनी विशेषता है।

रात्रि आदमी को नींद देती है। नींद आती है तो आदमी दूसरे अर्थ में न जाने कितने पापों से बच जाता है! एक तो नींद आई, बोलना बंद हो गया। तो सबसे बड़ा फायदा, झूठ बोलना बंद हो गया। रात आ गई तो देखना बंद हो गया। भले आंखें कई लोगों की खुली रहती हो तो भी दिखता तो नहीं। नींद में भी आंखें खुली होती हो, हो सकता है! तो बुरा देखना, इधर-उधर का देखना समाप्त हो गया। कान खुले हैं लेकिन नींद में रात्रि के कारण हम किसीको सुनते नहीं। हम किसी को मारपीट नहीं करते। रात्रि का ये प्रसाद है, रात्रि की ये कृपा है कि आदमी निद्राधीन होने के कारण कई बुराईयों से स्वाभाविक बच जाते हैं। ये बहुत बड़ा फ़ायदा है। तो ये भी एक विशेषता है। भजनानंदियों के लिए रात्रि ही भजन का काल माना गया है। योगियों के लिए रात्रि ही योगसाधना का काल माना गया। विशेष कोई ऐसी विद्या की साधनायें लोग करते हैं, उसका काल भी रात्रि ही होता है। याद रखना, तंत्र-मंत्र की जो लोग साधना करते हैं वो दिन में नहीं करते। दिन में तो सोये मिलेंगे वो, अस्त-व्यस्त मिलेंगे! रात्रि में ही अपने मूलरूप में आ जाते हैं और वो मंत्र-तंत्र की साधना में लग जाते हैं। तो एक साधना का काल भी रात्रि मानी जाती है। रात्रि में कई प्रकार की प्रकृति के कारण जो हमें पीड़ा है वो प्रकृति के शांत होने के कारण ये पीड़ाओं से हम बच जाते हैं। रात्रि में नींद के कारण आदमी रोगी है तो उसको रोग की मात्रा में भी राहत मिलती है। तो रात्रि के बहुत उपकार हैं, बहुत उपकार। दिन हमें बांट देता है, रात्रि हमें इकठ्ठा करती है। खबर नहीं, दिन में मन कहां, चित्त कहां, बुद्धि कहां, अहंकार कहां? और रात चारों को एक जगह इकठ्ठा कर देती है। रात्रि के अनंत उपकार है। तो रात्रि, संसार की रात्रि, हम जैसे जीवों की रात्रि की कई विशेषता है तो शिवरात्रि की विशेषता कैसी होगी? कौन वर्णन करे इस रात्रि का?

तो शिवरात्रि की तो बहुत बड़ी विशेषता है। प्रत्येक कृष्णपक्ष की चतुर्दशी शिवरात्रि मानी गई हमारी परंपरा में। लेकिन आज जो है वो महाशिवरात्रि मानी जाती है। शिवरात्रि का एक अर्थ है कल्याणकारी रात्रि। शिव का मतलब है कल्याण। मुझे तो ऐसा लगता है, शिवरात्रि के दिन दिन होता ही नहीं, चौबीस घंटों की रात होती है। ये तो हमें उसका पता नहीं है, इसलिए हम जागते हैं, ये करते हैं। बाकी ये एकमात्र बारह मास रात्रि ऐसी है जब चौबीस घंटों रात ही होती है साधुओं के लिए। ऐसी महारात्रि का दिन है। ऐसे दिन में, ऐसे पावन पर्व में मुझे ख़ुशी है कि मैं गिरनार में न रहकर ग्वालियर में हूं। ख़ुशी भी है, थोड़ा वो भी है। लेकिन ग्वालियर में आनंद आया। और ये याद रखना, महाशिवरात्रि का मतलब ये नहीं कि आज आप शिवपूजा ही करो। कोई भी कल्याणकारी काम करो वो शिवपूजा है। कोई भी कल्याणकारी काम, ये सब अभिषेक है। प्रभु ने आपको पैसे दिए हैं और आज के दिन आपके नौकर के लिए आप संकल्प करें कि मेरा पैतीस साल पुराना नौकर है उसको में एक कमरा, एक किचन, एक शौचालय बनवा दूंगा तो ये तुम्हारा शिव अभिषेक है। आज के दिन

यदि कोई बिलकुल अभावग्रस्त बालक, छात्र, विद्यार्थी, जो तेजस्वी है, उसकी प्रज्ञा प्रखर है, उसको उच्च शिक्षा प्राप्त करनी है लेकिन अभाव के कारण रुक गया है, ऐसे किसी छात्र की फीस भर दो और उसको विशेष शिक्षा के लिए आप उसको सहयोग करो, मेरी दृष्टि में ये शिवरात्रि का शिवपूजन है। भूखे को आदर के साथ रोटी देना शिव अभिषेक है। निर्वस्त्र को वस्त्र देना शिव अभिषेक है।

तो ऐसी लोकनाथ की ये रात्रि; श्लोकनाथ तो है; ऐसे शिव के महेशरूप का हम इस कथा में विशेष रूप में दर्शन कर रहे हैं। पूरा शिवचरित्र आप 'मानस' का पढ़ लीजिए। पूरे शिवचरित्र में मेरे गोस्वामीजी ने ज्यादा 'महेस' शब्द का प्रयोग किया। सतत 'महेस' शब्द का प्रयोग किये जा रहे हैं। पकड़ा जाता है कि गोस्वामीजी 'महेस' शब्द के द्वारा हमें कुछ विशेष कहना चाहते हैं। तो आइए, कुछ विशेषरूप में उसका आज दर्शन करें।

जीव के मन और शिव के मन में फ़र्क है। जीव की बुद्धि और शिव की बुद्धि में अंतर है। जीव का चित्त और शिव का चित्त, बहुत अंतर है। जीव का अहंकार और शिव अहंकार, जमीं-आसमां का फांसला है। उसका कुछ दर्शन कर लिया जाये। पहले जीव। हम सब जीव हैं। जीव का मन है चंचल, बस। जीव की बुद्धि व्यभिचारिणी है, भटकती है, निर्णय पर नहीं आती। ये करूं, ये करूं! विकल्प खोजती है नित-नित। एक जगह पर स्थिर नहीं होती। निर्णायक मत उनका स्वभाव नहीं रहता इसलिए व्यभिचारिणी होती है। जीव के चित्त में बारबार विक्षेप होता है। हमारी चित्तवृत्ति विक्षेप में रहती है। निरंतर बाधा आती है चित्त में। चिंतन तैल धारावत् नहीं रहता। किसी न किसी कारण विक्षेप आता है। ये जीव के मन, बुद्धि, चित्त का लक्षण है सीधा-सादा। ये चार वस्तु याद करें। हमारा मन बहुत चंचल है। हमारी बुद्धि भटकती रहती है। हमारा चित्त विक्षेपग्रस्त है। हमारा अहंकार बहुत घातक है। शिव का मन, शिव की बुद्धि, शिव का चित्त, शिव का अहंकार कुछ ओर है। अब 'मानस' के आधार पर उसका दर्शन किये चलें।

शिव का मन क्या है? शिव का मन मानसरोवर है। अब मानसरोवर में जल तरंगायित तो है, अवश्य तरंगायित है। हवा आती है। इतना बड़ा सरोवर है तो लहरें तो उठती है। मानसरोवर की तरंग ये उर्मियां है, चंचलता नहीं है। मानसरोवर में कोई तरंग आते हैं ये उर्मियों का एक ऊर्ध्वीकरण है। मेरे श्रोताओं को याद होगा, जब हम पहली बार मानसरोवर कथा गा रहे थे तब शायद मेरी व्यासपीठ बोली थी कि ये जो मानसरोवर की तरंगे सुबह-सुबह मैं देखता हूं तो मुझे लगता है, तुलसी के 'मानस' की चौपाइयां मेरे पास आ रही हैं। ये तरंग है ये उर्मियों का उद्रेक है, ऐसा मैंने कहा था। जो मैंने महसूस किया था। चंचलता ओर वस्तु है। उर्मि तो भीतरी स्थैर्य के ऊपर का एक नर्तन है। अंदर की स्थिति अवस्था पर ऊपर का ये नर्तन है, ये ही है उर्मि का उद्रेक, ऐसा समझो। मीरां अंदर से बहुत स्थिर है। नोट करना प्लीज़, मीरां जैसी अंदर से स्थिर महिला खोजना मुश्किल है। राबिया जैसी अंदर से स्थिर महिला खोजना मुश्किल है। लल्लादेवी जैसी अंदर से स्थिर व्यक्ति खोजना मुश्किल है। समढियाला की गंगासती जैसी अंदर से बैठी हुई महिला खोजना मुश्किल है। लेकिन उसके पैरों में नूपुर बज गए हैं, ये उर्मि का तरंग है। ये नर्तन है, चांचल्य नहीं है। हम तो कभी-कभी स्थिर बैठते हैं; न नाचते हैं, न गाते हैं, न बोलते हैं, न हिलते हैं, न डोलते हैं लेकिन अंदर से तो खबर नहीं, उहापोह की कोई सीमा नहीं है! उसको कहते हैं चंचलता।

तो मेरा और आपका मन चंचल है। मेरे महादेव का मन मानस है। 'मानस'कार ने कहा, 'करौं काह मुख एक प्रसंसा।' हे राघव, एक मुख से मैं आपकी कौन प्रशंसा करू? हजार मुख हो शेष की तरह तो भी न कर पाऊं, मेरे एक मुख से मैं कैसे प्रशंसा करूं? आप कैसे हैं राम कि 'जय महेस मन मानस हंसा।' महेश के मन रूपी मानसरोवर के आप हंस हैं। 'राम करौं के हि भांति प्रसंसा।' हे राम, मैं आपकी प्रशंसा किन शब्दों में करूं? इतना ही कहूं, 'मुनि महेस मन मानस हंसा।' आपका मन मानस है। याद रखें साधक भाई-बहन, हमारा मन चंचल, महादेव का मन मानस है, तरंगायित लहर है। भक्ति में तरंग होती है। लेकिन ये तरंग जलतरंग है, जल की उर्मियों की तरह है। चांचल्य नहीं। भक्ति नर्तन करेगी। तो शिव का मन मानस है। जीव का मन चंचल है। जीव की बुद्धि व्यभिचारिणी है। शिव की बुद्धि पार्वती है। ये भटकती बुद्धि नहीं है।

हमारा चित्त विक्षिप्त है। शिव का चित्त रामतत्त्व से छाया हुआ है। याद रखें। गोस्वामीजी ने चित्त को चित्रकूट की उपमा दी है। चित्रकूट है अचलता का प्रतीक। चित्रकूट है स्थिर चित्त का परिचय। लेकिन हमारे जैसे जीव के चित्त में तो विक्षेप है। शिव का चित्त चित्रकूट, ऐसा मैं कह रहा हूं। हमारा चित्त भी विक्षेपमुक्त हो जाये यदि निरंतर राममय हो तो। हमारे चित्त में क्यों विक्षेप आता है? क्योंकि निरंतर हमारा चित्त राममय नहीं होता। मेरे भाई-बहन, किसी बुद्धपुरुष के चित्त में आप कभी भी विक्षेप न देख पाओ तो समझना, उसका चित्त बिलकुल टोटली राममय हो चुका है, जहां विक्षेप को प्रवेश करने की जगह ही नहीं है। जिसका चित्त भोला होगा, निर्दम्भ होगा, निर्मल होगा, उसकी चित्तवृत्ति कृष्णमय हो गई है। शिव का चित्त राममय है। हमारा अहंकार घातक है। शिव का अहंकार वैश्विक है। हमारा अहंकार नाश करता है। शंकर का, महेश का अहंकार नवनिर्माण करता है। इतना फ़र्क है।

ऐसे शिव का आज महिमावंत दिन है। मेरी समझ में ज्ञान की सात भूमिकाएं है। महेश में सातों सात पूर्ण है। भगवान महादेव परम योगी है इसलिए पतंजलि के योगसूत्र का आश्रय करूं तो आठों आठ योग के आदि योगी हैं, अनादि योगी हैं शिव। भगवान शिव धर्म के दसों लक्षणों से अलंकृत हैं। धर्म के दस लक्षण माने गए। अरे, चतुष्पाद धर्म तो उनका नंदी बनकर सामने बैठा है। जो चार चरणवाला धर्म है- सत्य, दया, तप, सोच। ये जो चार चरणवाला धर्म वृषभ है, ये तो उनके आंगन में उनके सन्मुख बैठा है। तो धर्म के दसों लक्षण, योग के आठों अंग, ज्ञान की सातों भूमिका भगवान महादेव में विभूषित है। और भगवान शंकर 'मानस' में भक्ति के दाता भी माने गए हैं और भक्ति के भिक्षुक भी माने गए हैं। शिव भक्ति के दाता है। तो दाता है, भक्ति देता है। और मांगता भी है।

तो भगवान शंकर में नव भक्ति का दर्शन होता है, अष्टांग योग का, ज्ञान की सातें भूमि का और धर्म के दसों लक्षण का दर्शन होता है और 'लंकाकांड' में गोस्वामीजी ने जो धर्मरथ का वर्णन किया है उनमें जितने धर्म के सूत्र बताये वो मेरे महादेव में प्रस्थापित होते हैं। यहां महेश के दर्शन में केवल इतना ही कहकर आगे बढ़ूं, भगवान शिव भक्ति के दाता हैं, भक्ति के भिक्षुक है। शिव भक्तिस्वरूप है। शिव का बहिरी रूप तो 'कुंडल कंकन पहिरे ब्याला' ये सब है। लेकिन महेश का आंतरिक स्वरूप है वो भजन है, वो भक्ति है। तो 'मानस' में नौ प्रकार की भक्ति का वर्णन जो हुआ है वो नौ सूत्र महेश को लागू होते हैं। कभी मेरी व्यासपीठ ज्ञान की सात भूमिका महेश में कहां है उसकी यदि प्रवाह चला, गुरु ने चेतना दी तो कहेंगे। धर्म के लक्षणों की चर्चा करेंगे, योग की चर्चा करेंगे। लेकिन यहां आज शिवरात्रि के दिन भजन जिसका स्वरूप है उसकी बात करें। 'संकर सहज सरुप सम्हारा।' क्या मतलब है? सहज स्वरूप का अनुसन्धान शिव ने किया, उसकी जो सहज प्रवृत्ति है अंदर की वो भजन है। और भगवान भी कहते हैं कि 'संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।।' शंकर की भक्ति करेगा वो ही मेरी भक्ति पायेगा अथवा तो शंकर सहज जो भजन स्वरूप है उसका जो निरीक्षण करेगा, उसको जो आत्मसात् करेगा वो मेरी भक्ति पायेगा, ये दो अर्थ हैं। तो नौ प्रकार की मानसी भक्ति जो है वो महादेव में दिखती है। आइये, उसका थोड़ा जिक्र कर लें। शबरी के सामने गाए हुए नौ प्रकार की भक्ति, इसमें गोस्वामीजी कहते हैं, पहली भक्ति संत का संग करना। आप महेश का चरित्र देखिए। उसमें जैसे ही अवसर मिला, पार्वती के विरह में एकाकी शिव घूमते रहे। किसकी सोबत करते थे? संतों की सोबत करते थे। कहीं कोई मुनि मिल गए, कोई ऋषि मिल गए, उनके साथ बैठते, आप कुछ सुनाईए। संत्संग करते हैं। महादेव सत्संग के प्यासे हैं।

सत्संग तीन प्रकार का एक अर्थ में माना गया। आत्मिक सत्संग, मानसिक सत्संग, दैहिक सत्संग। ध्यान दें, आत्मिक सत्संग है केवल मौन। दूसरा है मानसिक सत्संग। मानसिक सत्संग में अपने मन के विचार सामनेवाले को सुनाया जाए। उसके विचार वो अपने परस्पर संवाद हो। ये मानसिक सत्संग है। परस्पर बातचीत हो। कुम्भ में क्या होता था? परस्पर बातचीत होती थी, मिलते थे, ये सत्संग है। तीसरा है कायिक सत्संग। केवल, केवल और केवल निष्केवल प्रेम से, मेरे शब्द पर ध्यान देना केवल, केवल और केवल निष्केवल प्रेम की जो चर्चा 'मानस' ने की है। निष्केवल प्रेम तुलसीदासजी ने लिखा है। एक ओर कोई जप करे, तप करे, योग करे, लाख साधना करे। भगवान इतनी कृपा इन पर नहीं करते हैं जितनी कृपा निष्केवल प्रेम करनेवाले पर करते हैं। वो कृपा के भाजन बन गए थे बंदर-

शिवरात्रि का एक अर्थ है कल्याणकारी रात्रि। शिव का मतलब है कल्याण। और ये याद रखना, महाशिवरात्रि का मतलब ये नहीं कि आज आप शिवपूजा ही करो। कोई भी कल्याणकारी काम करो वो शिवपूजा है। कोई भी कल्याणकारी काम ये शिव अभिषेक है। प्रभु ने आपको पैसे दिए हैं और आज के दिन आपके नौकर के लिए आप संकल्प करें कि मेरा पैतीस साल पुराना नौकर है उसको में एक कमरा, एक किचन, एक शौचालय बनवा दूंगा तो ये तुम्हारा शिव अभिषेक है। भूखे को आदर के साथ रोटी देना शिव अभिषेक है। निर्वस्त्र को वस्त्र देना शिव अभिषेक है।

भालू। निष्केवल प्रेम। जब दो व्यक्ति गले मिलते हैं केवल निष्केवल भाव से एक बाप अपने बेटे को गले लगा ले; एक भाई अपने भाई को गले लगा ले; एक माँ अपने पुत्र को अपने बेटे को गले लगा ले, कोई स्वार्थ नहीं होता। केवल निष्केवल भाव होता है। दो मित्र एक दूसरे को गले लगा ले। आप गलत अर्थ न करें तो दो विशुद्ध निष्केवल प्रेमी यदि एक दूसरे को गले मिलें तो हमारी संत परंपरा कहती है वो सत्संग है। यहां जो 'कायिक' शब्द मैं बोल रहा हूं तब सावधानी से बोलूं क्योंकि आपके दिल में कोई गलत अर्थ न बैठ जाए। और मैं जिस टोन में बोलूं इसके साथ ट्युनिंग करना। मेरा तो सब रेकर्ड हो रहा है। शताब्दी के बाद भी खोला जाएगा कि मोरारिबापू क्या बोले थे? आपने गलती से सुना तो आप जानें।

आपने वो तस्वीर, ये चित्र देखा है, जब श्रीनाथजी भगवान श्रीमन् महाप्रभुजी वल्लभाचार्य को गले मिले। ये चित्रजी आपने देखा है? ये निष्केवल प्रेम है। वहां ये दो देह निष्केवल प्रेम से एक हो रहे हैं। वहां बाकी सब मिथ्या है, केवल ब्रह्म सत्य है। छवि देखी होगी आलिंगन, वैष्णव धर्म का एक बहुत बड़ा ये देन है। ये कायिक सत्संग है जहां ब्रह्म भाव ही सत्य है बाकी सभी मिथ्या है। एक ओर मंज़र। आपने चित्र देखा होगा हनुमानजी और राम गले मिल रहें। हनुमानजी को उठाकर भगवान सीने से लगा लेते हैं। ये कायिक सत्संग है, वहां केवल निष्केवल प्रेम है। केवल ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है। तीसरा दृश्य देखें श्री राधा और कृष्ण के मिलन का। एक-एक गोपियन एक एकाकार। जब जुगल मिलते हैं। रसवर्षा होने लगती है। राममय जगत हो जाता है। वहां केवल, केवल, केवल निष्केवल प्रेम है। ब्रह्म ही एकमात्र है, बाकी सब मिथ्या है। एक मंज़र ओर देखिये। पाहिमा, पाहिमा, पाहिमा कहते चित्रकूट के आश्रम के द्वार पर भरत लकुट की तरह गिर पड़े और उसी समय भगवान राम अपनी वेदिका से उठे प्रेम अधीर होकर। जब दोनों मिले एक-दूसरे के आश्लेष में, किसी को पता नहीं कि हम कहां है? सब मिथ्या है। एक यही मिलन ब्रह्म है। केवल ब्रह्म सत्य है। यहां मन बेकार है। यहां बुद्धि का सोचना खत्म। यहां चित्त की कोई भी धारा काम नहीं करती। अहंकार तो भाग गया। केवल भरत और राम मिले हैं। ये है कायिक सत्संग। जहां सब शास्त्र पीछे रह जाते हैं। सब ग्रन्थ दूर से दर्शन करते हैं। इसमें हम विक्षेप न करें; इसमें कोई संविधान लागू न करें। यहां सब मिथ्या हो गया, सब इधर-उधर हो गया। उसको तलगाजरडी जुबां कायिक सत्संग कहती है। तलगाजरडी जुबां परस्पर केवल ब्रह्म की चर्चा बाकी सब मिथ्या, उसको मानसिक सत्संग कहती है। तलगाजरडी जुबां उसको आत्मिक सत्संग कहती है, जहां दो बुद्धपुरुष चुप बैठ जाए। एक सन्नाटा सा हो जाये। या तो दोनों एक-दूसरे के सामने मुस्कुरायेंगे या दोनों रोयेंगे। इससे बिना कोई वस्तु वहां चलती नहीं। तीन प्रकार का सत्संग। मेरा महादेव इसी भक्ति में सराबोर है।

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।।

मैं बोल रहा हूं, आप सुन रहे हैं, ये सत्संग हैं। ये सत्संग है जरूर, लेकिन मौन भी सत्संग है। एक अच्छी ग़ज़ल सुनों और दिल से दाद दो, मुझे कोई आपत्ति नहीं, ये भी सत्संग है। एक सुंदर लोकगीत सुनों और उसमें डूब जाओ वो भी सत्संग है। एक शास्त्र का स्तोत्र आप सुनों और गुनगुनाने लगो, गाने लगो वो भी सत्संग है। एक शिल्पकृति को देखकर शिल्पकृति में डूब जाना सत्संग है। मोहब्बत भरी निगाहों से, करुणा भरी आंखों से, जिस आंखों के पीछे सत्य गहराई से पड़ा हो ऐसी निगाहों से देखना सत्संग है, यस। वहां दो ही बातें रहती है, या मुस्कराहट या आंख में आंसू। मेरे कहने का मतलब मेरे भाई-बहन, दो ही वस्तु होती है या तो दो बुद्धपुरुष हंसते हुए पाओगे या रोते हुए पाओगे। मोरारिबापू कथा बोले और आप सुनो, ये सत्संग तो है ही चलो, माना। लेकिन एक अच्छे मंजर को देखते-देखते तुम्हारी आंख नम हो जाये पवित्र भाव से तो वो भी सत्संग है। सत्संग को संकीर्ण मत किया जाये। अच्छा चित्र, अच्छा शिल्प, अच्छा काव्य भी सत्संग है। तो भगवान शिव में सत्संगवाली पहली भक्ति भरपूर है। इसलिए वो संतों का संग करते रहते हैं महेश और सत्संग की भिक्षा भी पाते हैं।

दूसरी भक्ति है जहां कथा होती हो वहां जहां जगह मिले वहां बैठकर कथा के प्रसंगों का रस उठाना, रस लेना ये दूसरी भक्ति। शिव कहते हैं, पार्वती, मैं भुशुंडि के आश्रम में हंस बनकर पीछे बैठ गया था। ये दूसरी भक्ति है। 'एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं।' ये दूसरी भक्ति है। कथा श्रवण में इतनी रुचि, ये दूसरी भक्ति शिव में मौजूद है। अपने श्रेष्ठ, अपने ज्येष्ठ, अपने गुरुजनों की सेवा अभिमान छोड़कर करना ये तीसरी भक्ति है। शंकर और राम का जो सम्बन्ध है, 'सेवक स्वामि सखा सिय पी के।' महेश राम का सेवक भी है, राम का सखा भी है और

राम के स्वामी भी है। और जब भगवान महेश राम को अपने से श्रेष्ठ गुरुजन के रूप में मानते हैं तो कहते हैं, आपकी आज्ञा मेरे सिर पर है। वहां शिव ने ये नहीं कहा कि मेरी प्रतिज्ञा है। मैं नहीं तोडूंगा। बात मान ली। चौथी भक्ति है मेरे गुणगानों का गायन करना लेकिन कपट छोड़कर। और महादेव तो कथा कहते हैं, गाते हैं, कपट छोड़कर गा रहे हैं। तो चौथी भक्ति भी उसमें दृश्यमान है।

पांचवीं भक्ति भगवान राम ने शबरीजी के सामने कही है वो है मंत्र-जाप दृढ़ विश्वास से करना। अब 'संकर महामंत्र जोई जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू।।' मंत्र जाप तू निरंतर कर और दृढ़ विश्वास का क्या कहना? स्वयं विश्वास है। काया ही विश्वासमय है। 'भवानीशंङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।' तो ये पांचवीं भक्ति निष्ठापूर्वक मंत्र जाप करना वो भी महादेव में परिपूर्ण दिखती है।

छठ दम सील बिरति बहु करमा।
निरत निरंतर सज्जन धरमा।।

बहुत कर्मों से वैराग्य, ये तो शिव का स्वभाव है। वो तो भीड़ से दूर रहते हैं; स्मशान में रहते हैं; कैलास में रहते हैं। प्रत्येक कर्म से निवृत्ति की ओर जाते हैं। फिर भी लोकसंग्रह में सज्जन की तरह पेश आते हैं। एक उम्र हो जाये न तब बुज़ुर्ग को चाहिए धीरे-धीरे बहुत प्रवृत्ति से थोड़ा निवृत्ति की ओर कदम रखें, ये जरूरी है। घर में जो तैयार हो रहे हैं उसको मौका दो। तुम थोड़ा हटो। ये जरूरी है। उपनिषदकार कहते हैं, बहुत कर्मों से, बहुत पैसों से, बहुत लोगों से शांति नहीं मिलती। शांति धीरे-धीरे इन सबसे निवृत्ति पाने से मिलती है। उम्र होते आदमी धीरे-धीरे निवृत्ति की ओर, उसको छठी भक्ति कहिये। भगवान शंकर निवृत्तिपरायण लोकनाथ हैं, स्मशान में रहते हैं।

पूरे संसार को ब्रह्ममय मानना, देखना, महसूस करना और किसी का भी दोष न देखना सातवीं भक्ति है। महादेव दोषदर्शी नहीं है, गुणदर्शी हैं। वो इसलिए इतने अवगुण भरे उपकरण अपने अंग पर रखते हैं कि किसी का दोष देखने का जी भी न करे। किसी को डसता है, ऐसा क्यों कहूं? डसनेवाले सांपों को ही तो मैंने शरीर पर धारण किया है। कोई ये बिच्छु की तरह सबको काटता है, मुझे किसी का दोष ही न दिखे इसलिए मैं दुनिया के सभी दोष को मेरे ऊपर शृंगार बनाकर रहूं। सपने में भी किसी का दोष न देखना, सातवीं भक्ति। भक्ति करना माने धोती पहन लेना, तिलक कर लेना, माला ले लेना, इतना ही नहीं है। सपने में भी दूसरे के दोष न देखें, सब में प्रभु है ये गुणदृष्टि सातवीं भक्ति है। भगवान शंकर का एक वक्तव्य है-

बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ न कोई।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होई।।

वहां 'महेस' शब्द का प्रयोग कर दिया। कौन महेश तत्त्व है? ये मूढ़ है उसमें में दोष देखूं? ज्ञानी में गुण देखूं? नको। सपने में भी किसी का दोष नहीं देखते। सती ने इतनी-इतनी बातें कहीं कोई दोष नहीं निकाला। न डांटा, न व्यंग्य सुनाया, न कुछ ताना मारा, कुछ नहीं कहा।

आठवीं भक्ति है जिस हालत, जो स्थिति, जो लाभ, जो भी हमारे पास है वर्तमान में उसमें संतुष्ट। ये आठवीं भक्ति है शंकर में। सपूर्ण संतुष्ट बाबा। तीन पैर का खटला? कुबूल। बूढ़ा बैल? कबूल। जो आदमी कुबेर को विमान दे और खुद बूढ़े बैल पर बैठे! उसकी संतुष्टि तो देखो! भक्तों को मालामाल कर दे और बाबा बैठा-बैठा माला फेरे! हर हालत में, हर स्थिति में जो आदमी संतुष्टि महसूस करे वो आठवीं भक्ति है।

नवम सरल सब सन छलहीना।
मम भरोस हियं हरष न दीना।।

नौवीं भक्ति सरलता, सहजता, छल बिना जीवन। महादेव के समान कौन सरल है? कौन सहज? बिल्कुल सरल। देवताओं ने कहा, ब्याह करो। बोले, चलो ब्याह है। ये करो, चलो ऐसा करें। भवानी कहे, मैं जाऊं पिता के घर। ज़िद की, जाओ। आई, तो अपराधों को प्रकट न किया। बिल्कुल सहज सरल जीवन आठवीं भक्ति। महादेव बहुत सहज हैं, बहुत सरल हैं, बहुत स्वाभाविक है। यार! ब्याहने जाए तब तो कुछ सुंदर कपड़े पहने! लेकिन सहज-सरल, जैसे थे वैसे ही गए। बिल्कुल सहज। और मेरे भरोसे पर जो जीता है उसको कभी न कोई हर्ष, न कोई ग्लानि होगी, इससे मुक्त रहेगा। भरोसेवाला ही दोनों से मुक्त रह सकता है।

भगवान महादेव में नौ भक्ति का दर्शन होता है क्योंकि ये भक्ति के भिक्षुक भी हैं, भक्ति के दाता भी हैं। तो नौ भक्ति भगवान महेश में नज़र आती है। ऐसे महेश को केंद्र में रखकर हम कुछ चर्चा कर रहे हैं। अब दो दिन बचे हैं। दो दिन में जितना गुरुकृपा से स्मृति में आएगा इतना महेश के बारे में हम संवाद करेंगे और कथा के प्रसंगों को भी हम संक्षेप में विराम की ओर लिए चलेंगे।

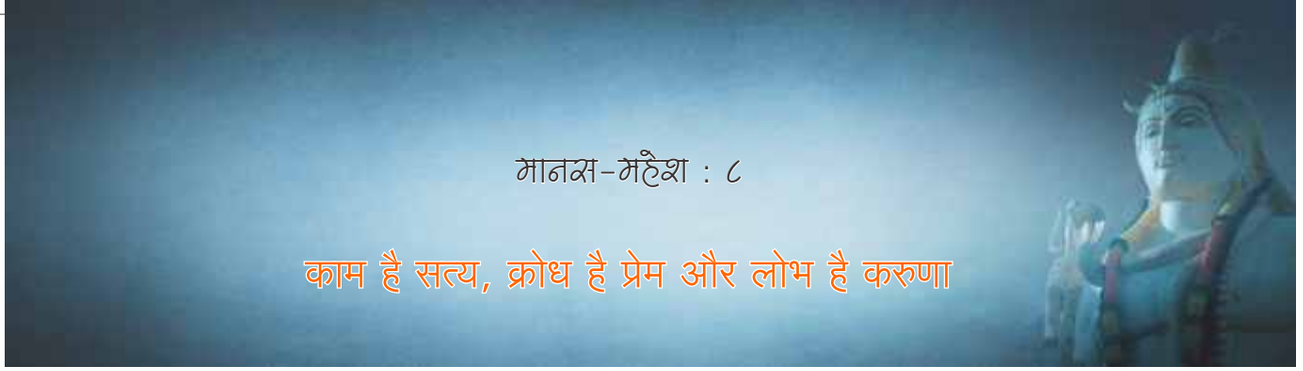

मानस-महेश : ८

काम है सत्य, क्रोध है प्रेम और लोभ है करुणा

'मानस-महेश', जिसकी हम वाक्-श्रवण पूजा कर रहे हैं और इस बहाने कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा गुरुकृपा से संवाद के रूप में हो रही है। आज के विषय में प्रवेश करूं इससे पूर्व कुछ जिज्ञासाएं है उसको ले लूं।

'बापू, बार-बार कथा सुनने से कथा की वेल्यू कम हो जाती है?' किस महाशय ने ये कहा? कौन है ये? कौन है ये गुमनाम? कौन है ये बदनाम? जो कहे, कथा सुनने से कथा की वेल्यू कम हो जाती है! कथा तो जीवन के सत्य, प्रेम और करुणा की कसौटी है। जैसे सोना कसौटी पर कसा जाता है और निखरता है और मूल्यवान होता है। सत्य, प्रेम और करुणा की कसौटी कथा है। इससे उसमें निखार आता है। कथा बार-बार सुनने से कभी वेल्यू कम नहीं होती। कथा की वेल्यू कभी भी कम नहीं होती। वेल्यू हो तो कम हो। जिसकी वेल्यू ही नहीं, जो कोई तराजू में तोली न जाए ऐसी ये भगवद्कथा है। क्या वेल्यू करोगे? क्या कीमत करोगे? कथा कथा है। इसलिए ये प्रश्न निराधार है।

'तलगाजरडी दृष्टि से इन प्रश्नों पर खुलासा करे, अध्यात्मजगत क्या है और कोई जगत अध्यात्म नहीं है?' ज्यादा विस्तार करने को जी नहीं कर रहा है, यदि एक वाक्य में आप समझ ले तो अध्यात्मजगत ओर कुछ नहीं है, अध्यात्म है आपका स्वभाव। ऐसा योगेश्वर कृष्ण ने कहा है, मैं उसका वाहक हूं। स्वभाव ही अध्यात्म है, हमारा और आपका स्वभाव। हम कहते हैं, कोई ऐसे अद्वैत की चर्चा करो, ब्रह्म की चर्चा करो, निराकार शून्य की चर्चा करो। उसीको हम अध्यात्म मानते हैं। ये अध्यात्म का मार्ग हो सकता है, मंज़िल नहीं है। मंज़िल है जब मुझे और आपको अपना जन्म-जन्म का जो मूल स्वभाव है, उसका पता लग जाये, वो ही है अध्यात्म। इसके अलावा कोई अध्यात्म नहीं है। स्वभाव माने अपनी आत्मा भी। स्वभाव का मतलब अपना नेचर ही नहीं, स्वभाव का एक अर्थ होता है अपनी आत्मा। और वो जब तक न सधा जाए, लाख बोलें, लाख सुनें, लाख पढ़ें, लाख स्वाध्याय करें! हमारा नरसिंह मेहता कहता है-

ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चीन्यो नहीं,
त्यां लगी साधना सर्व झूठी।

तो अध्यात्म है स्वभाव। स्वभाव में जीना अध्यात्म में जीना है। स्वभाव कैसा भी हो, स्वभाव में जीयो, ये अध्यात्म है। सत्संग करने से कुछ समय आप खलता के स्वभाव से भलता के स्वभाव में आ भी सकते हैं। लेकिन कायम मूल स्वभाव निर्मूल नहीं होता।

खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू।
मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू।।

स्वभाव अभंग है और अभंग अध्यात्म है, अभंग आत्मा है, अभंग केवल परमात्मा है। अच्छे लोगों की सोबत करते हैं तो कुछ समय हम अच्छे मीन्स दुनिया की दृष्टि में हम भद्र लगते हैं अथवा तो दुनिया ने जो कुछ मीटर, जो कुछ बंधारण बना दिया है कि ऐसा हो तो अच्छा, ऐसा हो तो बुरा, उसी दुनिया के गणित में हम अच्छे थोड़ी देर के लिए हो जाते हैं। लेकिन 'मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू।' जैसे हो कह दो, स्वभाव खोल दो। 'मो सम कौन कुटिल खल कामी।' संतों ने जो हिम्मत की है, वो हिम्मत करना साधु के कदमों पर चलना है। जिसकी प्रकृति में लोभ है वो कह दे कि मैं लोभी हूं, ये आदमी लोभी होते हुए अध्यात्म में जी रहा है। दंभ किया तो गए! जिसके स्वभाव में क्रोध है वो कह दे, मैं क्रोधी। मेरा परशुराम कहता है, बाल ब्रह्मचारी अति क्रोधी, लेकिन परशुराम महात्मा बन गया, अवतार बन गया। क्योंकि स्वभाव की उद्घोषणा है। मेरे भरत कहते हैं, मैं भयंकर लोभी हूं। भरत का निवेदन है! भरत के परिचय में भरत संत है, ऐसा कम

लिखा। यहां जब परिचय है तब वहां लिखा, ये आदमी बहुत लोभी है। लेकिन मैं लोभी हूं, अपने परिचय में जो आया उसका स्वीकार भरत को आध्यात्मिक बना गया। हनुमानजी कहते हैं, मैं कामी हूं। बोलो! 'पशु अति कामी।' मैं पामर हूं, मैं कामनाग्रस्त हूं। हमको बहुत गलत पाठ सिखाये गए! धर्ममंच पर बैठे हुए लोगों ने अपने आपको कुछ विशेष प्रस्थापित करने के लिए छोटी-छोटी बातों में हमें गुमराह कर दिया! कह दो हम बुरे हैं। यही है अध्यात्मभाव।

आप पचा पाओ तो मैं तो वहां तक कहना चाहता हूं, जो मेरे सूत्रों को मैं यहां लगा दूं, काम है सत्य। आप पचा पाओगे? जिसको वमन हो उठकर बाहर चला जाये! काम सत्य है। लाख अनादर करो, काम सत्य है। ईश्वर का बेटा कभी गलत नहीं हो सकता। 'कृष्णतनय होइहि पति तोरा।' काम सत्य है और क्रोध प्रेम है। अब, अब, अब हैरान हो जाओगे! क्रोध प्रेम है। काम सत्य है, यस। काम सत्य है, इसलिए हम-आप हैं। हम-आप हैं, तुलसी है तो 'रामचरितमानस' है। तुलसी का काम सत्य है। सत्य का इन्कार न करो। तो काम है सत्य। जो मैं फ़ैकूंगा और अच्छा फैकूंगा। सब रेकोर्ड हो रहा है। काम है सत्य। काम है राम की छाया। जितना राम सत्य, उसकी छाया होने के कारण काम भी जगत का सत्य है, क्योंकि काम से जगत बना है। आपको कोई दूसरा धीरे-धीरे पसंद आने लगे, समझना काम का सत्य प्रकट होने लगा। अकेले आदमी में काम का सत्य प्रकट नहीं हो सकता। वो सत्य स्वरूप है लेकिन किसको बताये? इसलिए 'स एकाकी न रमते।' वो अकेला नहीं क्रीड़ा करता। इसे कोई दूसरा चाहिए। ये सत्य है। उसका निरादर न करे। खोखले दंभ में न बैठे।

काम है सत्य। धर्मजगत को तकलीफ़ हो सकती है लेकिन वो धर्मजगत है ही नहीं! वो धंधाजगत है! वो प्रोफेशनल है, प्रेमी नहीं है। काम है सत्य। कोई सद्गुरु शरीर धारण करके हमारे बीच में आता ये है तो अस्तित्व की व्यवस्था लेकिन सद्गुरु को देहधारी बनाने के लिए भी किसी दो व्यक्ति के काम ने काम किया है, इस सत्य को मत भूलें। हमारे पर इस काम ने उपकार किया है। न कर्जा चुका सकेंगे उस पवित्र काम का हम कभी! रघुरामदादा का मैं कर्जा न चुका पाऊं जिसने मुझे त्रिभुवनदादा दिया। दादा के पिता का नाम था रघुरामदादा। मैं आपसे क्या छुपाऊं? मैं मेरी पूजा में जो शिवलिंग रखता हूं, सालों से उसका अभिषेक करता हूं, मैंने कल शिवरात्रि के दिन मेरे शिवलिंग का नाम रखा त्रिभुवनेश्वर। कल मैंने मेरे शिव का नामकरण किया। मेरे लिए कल का चौबीस घंटा उत्सव का था। काम है सत्य। क्रोध है प्रेम। बावा बिगडा है अब! लाल ढोरी कहे कि बावा कहां खो गया? नीतिन वडगामा ने एक गज़ल लिखी इस शिवरात्रि पर। ये तो उसका व्यासपीठ के प्रति अहोभाव है। इसलिए मैंने पढ़ा नहीं। कल मेरे पास ये गज़ल पहुंची थी।

आंगणे अवसर छतांये थइ गयो केवो नमायो!
कोण जाणे केम पण गिरनार ने गमतुं नथी!
लाल ढोरी पूछती के एक बावो क्यां छुपायो?
कोण जाणे केम पण गिरनार ने गमतुं नथी!

काम है सत्य। मैं कितने प्रमाण दूं यार! वशिष्ठजी के कहने पर शृंगी ने पुत्रकामयज्ञ न किया होता तो मेरे पास और आपके पास राम न होता। लिखा क्या है शब्द, उसको तो कोई खोलता ही नहीं! धर्म, धर्म, धर्म, धर्म! वसंत ऋतु में पूजापाठ कम करोगे तो चलेगा। कोई खिले हुए गुलाब को देखो। वसंत में यही पूजा है। ये होली आ रही है। होली में गंगाजल से यदि आप ठाकुरजी को स्नान न कराओ तो चलेगा लेकिन प्रेम से रंग का उत्सव मनाओ, ये पूजा-पाठ है। हमारे रमेश पारेख ने एक कविता लिखी थी-

घांघा! घांघा! क्यां हाल्यो?
वसंतमां तें फूलने बदले धरम हाथमां कां झाल्यो?

फूल को देखता नहीं, नदी के प्रवाह को देखता नहीं, चांद को देखता नहीं, पवित्र आंखों से किसी का सौन्दर्य देखता नहीं और धर्म, धर्म, धर्म! क्या पागलपन है ये! इसमें धर्म की आलोचना नहीं है; तथाकथित धार्मिकों की आलोचना है। काम है सत्य। रामजन्म कैसे होता? 'सुंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ जग्य करावा।' और पुत्रकाम यज्ञ के कारण हरि गर्भ में आया। तो काम है सत्य।

क्रोध है प्रेम। खूब करो। क्रोध है प्रेम, पोझिटिव अर्थों में। अच्छा आदमी, पवित्र व्यक्ति उसी पर क्रोध करते हैं जिस पर उसको बहुत प्रेम होता है। एक बुद्धपुरुष जब कोई आश्रित पर क्रोध करे; करेगा नहीं, उसका क्रोध भी निर्वाणदायक होता है। फिर थोड़ी डांट दे, उस दिन घर में

उत्सव मनाओ। आज मेरे बाप ने मुझे डांटा! आपको पता है, कभी-कभी लोग बहुत क्रोध करते हैं ये रोने लगते हैं। मनोविज्ञान क्या कहता है? जो बहुत क्रोध करेगा वो रोने लगेगा। बहुत क्रोध करनेवाला सो जाएगा। अत्यंत लोभी सो नहीं पाता। अपवाद हो सकता है। जिसको बहुत क्रोध आता है वो रोयेगा। इसकी आंख में आंसू आ जायेंगे, लाल आंखें हो जाएंगी। क्रोध है प्रेम। गुरु ने क्रोध नहीं किया महाकाल के मंदिर में लेकिन गुरुओं का गुरु, त्रिभुवन गुरु 'सहि नहिं सके महेस।' इस क्रोध ने कितना प्रेम बरसाया कि हमें कागभुशुंडि दे दिया। एक त्रिभुवनेश्वर, त्रिभुवन गुरु महादेव का, महाकाल का क्रोध क्या कर गया! एक ममता से भरी माँ अपने बच्चे पर थोड़ा क्रोध करे तो बच्चा यदि समझदार है तो सोचेंगे, ये क्रोध के पीछे प्रेम है; औरों के बच्चों पर क्यों नहीं करती?

प्रेम तो पारा है। पारा पचाने की क्षमता हम में नहीं है। अभ्यास करना पड़ेगा। क्रोध के द्वारा प्रेषित प्रेम जो पचा सकेगा वो प्रसन्नता द्वारा प्रेम पहचान पायेगा। तो बुद्धपुरुष किसी पर थोड़ा यदि क्रोध करे; न करेगा, लेकिन करे भी तो ये क्रोध प्रेम मुल्क है; ये भक्तिदाता है; ये उत्सव मनानेयोग्य लम्हें है जब कोई सद्गुरु अपने शिष्य को थोड़ा कन्ट्रोल करे। सामान्य स्तर की बात नहीं है ये, समझियेगा। और लोभ है करुणा। आहाहा! लोभ है करुणा यार! अब लोभ और करुणा? कोई महापुरुष, कोई सद्गुरु अस्तित्व की व्यवस्था के रूप में धराधाम में आते हैं कभी तुलसी, कभी नरसिंह, कभी मीरां, कभी जिसस, कभी पयगंबर, कभी नाभाजी, कभी एकनाथ, कभी ज्ञानदेव, कभी गंगासती, कभी राबिया, कभी ठाकुर, कभी रमण, कभी अरबिंदो, ये तो व्यवस्था है, आते हैं। लोग भजन क्यों करते हैं बहुत? साधु को होता है, मैं ओर हरिनाम लूं। और ये लोभ क्यों? ये लोभ हम पर करुणा करने के लिए है कि मैं ज्यादा स्वाध्याय करूं, लोगों को ज्यादा शास्त्र दूं। मैं ज्यादा भजन करूं, लोगों को ज्यादा भक्ति का पैगाम दे सकूं। मैं ज्यादा तप करूं, लोगों को ज्यादा तप के तेज से पवित्र करूं। इसके पीछे करुणा है। 'लोभिहि प्रिय जिमि दाम।' तुलसी कहते हैं, लोभी को जैसे दाम पसंद है, प्रिय है, ऐसे राघव, तेरा नाम, तेरी लीला, तेरा धाम, तेरा रूप मुझे लोभी की तरह पसंद हो। उसके पीछे करुणा है।

तो आपने पूछा है, अध्यात्म क्या है? स्वभाव ही अध्यात्म है। स्वभाव का सवाल है। और ये अभंग है। तो फ़कीरों की, संतों की, बुद्धपुरुषों की बातें ओर है। हमारे जैसों के लिए तो आदमी को स्वीकार कर लेना चाहिए कि हम ऐसे हैं। बाकी दांभिक स्वस्थ नहीं होता। 'मो सम कौन कुटिल खल कामी।' स्वभाव को प्रकट करना, आत्मनिवेदन कर देना शिखर की भक्ति है। आत्मनिवेदनम् आखिरी भक्ति का नाम है।

'कलिकाल में भगवान का भजन करनेवाला परेशान क्यों रहता है?' किसने कहा? ये कहा किसने? ये हमारा आरोप है कि बेचारा भजन करता है और इतना परेशान है! जो भजन करता है उसने कभी शिकायत नहीं की कि मैं परेशान हूं। वो तो कहता है, 'राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है।' मालिक तू जो करे। नानकदेव कहते हैं, तुझे ठीक लगता है मुझे छेड़ना है, छेड़। ये भी तेरा प्रसाद है। श्रीनाथजी भगवान का जो ठौर प्रसाद है न जरा कड़क होता है। और सत्यनारायण का प्रसाद बिल्कुल कोमल शिरा होता है। है तो प्रसाद दोनों। मुझे नहीं लगता कि जो सही में भजन करता है उसको कोई परेशानी होती है। दुनिया को लगती है। और यदि आपको भजनानंदी परेशान दिखे तो भी वो परेशानी खुद की नहीं है, ये नासमझ क्या किये जा रहे हैं उस पर करुणा आने की परेशानी है। दया आती है कि जैसे जिसस ने कहा था कि लोगों को पता ही नहीं कि क्या किये जा रहे हैं!

नरसिंह मेहता ने कोई शिकायत नहीं की। हां, भजनानंदी ने कभी शिकायत की भी है तो अपनी इज्जत के लिए नहीं, हरि की इज्जत के लिए; तेरा बाना बदनाम होगा। इसलिए नरसिंह मेहता को मांडलिक ने जूनागढ की जेल में बंद कर दिया और कहे कि तेरा ठाकुर बिल्कुल सामने आकर तुम्हारे गले में माला पहनाये तो मैं मानूं, बाकी तू दांभिक है। और महेता को कोई परेशानी नहीं। मार दे मांडलिक तो मार दे! भजनिक को आप मार सकते हैं, भजन को नहीं। भजन तो अमर है। भक्ति वृद्ध नहीं है, युवान है। भजन कायम युवा है। भक्ति कायम युवा है। भक्ति तो नित यौवना है। तो नरसिंह मेहता को जेल में बंद किया। उसको खुद की कोई चिंता नहीं लेकिन हरि के बाने की चिंता है। इतनी छोटी-सी बातों में ये मांडलिक मुझे मार देगा तो हे द्वारिकाधीश, लाज तेरी जाएगी! हमारी क्या लाज? हम तो नंगे आये थे, नंगे लोग निकाल देंगे। पीताम्बरवाला, तेरी इज्जत का सवाल है! हे द्वारिकाधीश, इतना शृंगार सज कर बैठता है तो तेरी इज्जत का प्रश्न है! भक्त को क्या परेशानी?

'बापू, मेरी एक लड़की है। उसके पिता हार्ट अटैक में नहीं रहे। लोग कहते हैं कि पिता नहीं तो माँ कन्यादान नहीं कर सकती?' अपने पति के छोटे-से फोटो को अपने पर्स में रखकर वो पर्स अपने दायीं ओर रखकर कन्यादान कर दो। भगवान राम को यज्ञ करना था। जानकी नहीं थी तो स्वर्ण मूर्ति प्रस्थापित करके ये निभाई। और यदि कहीं शास्त्रों में उसके लिए प्रतिबंध भी हो तो ये इकीसवीं सदी में यदि संशोधन किया जाये और वो भी परम हित के लिए किया जाये तो शास्त्र भी राजी होगा। शास्त्र केवल जड़ता नहीं है। शास्त्र केवल सिद्धांत नहीं है। शास्त्र ऋषि-

मुनियों की अनुभूतियां है, उसकी महसूसियां है। मेरी राय में, मेरी व्यक्तिगत राय में आप कर सकते हैं कन्यादान, कर सकते हैं। मुझे नहीं लगता कि कोई आपत्ति हो।

तो 'मानस' में महेश, उसकी कुछ सात्त्विक-तात्त्विक चर्चा एक बातचीत के लहजे में, एक संवाद के रूप में हम और आप कर रहे हैं। काश! इसमें से हमारा आंतरिक विकास हो और हम विश्राम की ओर कुछ आगे बढ़ पाएं। शिव के पंचमुख हैं। 'मानस' भी हस्ताक्षर करता है, 'बिकट बेष मुख पंच पुरारी।।' तो भगवान शिव के कई रूपों में महेश का बहुत बार प्रयोग हुआ 'मानस' में, हम जानते हैं। गुरुकृपा से मैं ये कहना चाहूंगा कि पांच बातों की जो जानकारी अखंड रूपेण रखते हैं वो महेश है। वो पंचमुखी महेश है। एक, जो परमार्थ को जानता है वो महेश है। परमार्थ के दो अर्थ। जैसे हम कुछ पारमार्थिक काम करते हैं, सत्कर्म करते हैं। कहते हैं, लोग परमार्थ कर रहे हैं। खाली स्वार्थी नहीं हैं, परमार्थी हैं। एकदम स्थूल अर्थ में। और परमार्थ को जानना एक दूसरे अर्थ में भी 'मानस' में आया है। ईश्वर को जानना; परमात्मा को जानना; ब्रह्म को जानना; राम को जानना। क्यों?

राम ब्रह्म परमारथ रूपा।
अबिगत अलख अनादि अनूपा।।

राम है परमार्थ। राम को जानना वो परमार्थ जानना। लेकिन इस परमार्थ को वो जान सकता है-

सोई जानई जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हई होई जाई।।

ये भी तेरा मर्म नहीं जानता। लेकिन महेश को तो जना दिया था, इसलिए वो जान गए। अथवा तो दोनों में भेद कहां है? तत्त्वतः एक हैं। तो महेशतत्त्व जो 'मानस' का है वो परमार्थ का ज्ञाता है। फिर आखिरी बात-

अज महेस नारद सनकादी।
जे मुनिबर परमारथबादी।।

वाद अच्छा नहीं है। यद्यपि 'गीता' में वाद ईश्वर की विभूति है। लेकिन आजकल जो वाद-वाद है ये तो सब विवाद है! कोई कहते हैं, हम मार्क्सवादी हैं। कोई कहते हैं, हम लेनीनवादी हैं। कोई कहे, हम गांधीवादी हैं। गांधीजी को अच्छा नहीं लगता था, उसकी उपस्थिति में जब गांधीवाद की उद्घोषणा लोगों ने करी। कृपलानी ने भी विरोध किया और गांधी ने तो दो टूक विरोध कर दिया, मेरे नाम से कोई वाद नहीं होना चाहिए। गांधी ने मना कर दिया। क्योंकि कई गड़बड़ें होती हैं वाद में। तो परमार्थवादी मीन्स यहां ये परमार्थ का जाननेवाले। क्योंकि यहां कुछ लोग अनर्थवादी होते हैं जो अनर्थ के पक्ष में खड़े रहते हैं। उसको अनर्थ ही रास आता है! कभी-कभी सामने सत्य दीखता भी है लेकिन मानसिक विकलांगता ऐसी होती है कि खड़ा रहेगा कायम अनर्थवादी बनकर! चलो, अनर्थवादी से कुछ लोग बेहतर हैं जो स्वार्थवादी हैं। कम से कम उसका कर लेता है! अनर्थ तो नहीं करता दूसरों का। अपना स्वार्थ साध ले। तो कई लोग अनर्थवादी होते हैं। कई स्वार्थवादी होते हैं। कई केवल अर्थवादी होते हैं। केवल अर्थ, अर्थ! सब कुछ मानों अर्थ में। जो आदमी सब कुछ का अर्थ समझ लेता है वो अर्थवादी नहीं बन पायेगा। ये सब कुछ जो है। ये कायनात जो है। ये पूरा जगत जो है। उसका जो अर्थ समझ लेता है वो केवल एकाकी नहीं बन सकता।

यहां महेश की बात करते नारद का नाम भी जोड़ा है, अज का नाम भी जोड़ा है, सनकादिक का नाम भी जोड़ा है। लेकिन मुझे तो महेश पर ध्यान केन्द्रित करना है। तो मेरे बाबाजी कहते हैं, महेशतत्त्व वो है जो परमार्थवादी है। परमार्थवादी माने आजकल के वादों की चर्चा में उसको न ले प्लीज़। वो वाद माने ईश्वर का अंश जो विभूति के रूप में वाद प्रस्थापित हुआ है वो; जो परमार्थ को जानता है, परमार्थ को जीता है वो। शिव के पंचमुख, पांच बातों को जानना, ये पंच मस्तक है शिव का। कभी आंखों से शिव ने ऐसा देखा और जाना; कभी सोचा और जाना; कभी सुना और जाना; कभी बोला और जाना। ये सब महेशपना है, पंचमुखी महेश। तो परमार्थवाद वो महेशतत्त्व है।

कुछ बात वर्णन की जा सकती है लेकिन कभी-कभी वर्णन करनेवाला रस न भी जानता हो। कभी-कभी कई लोग वर्णन बहुत कर सकते हैं लेकिन रस न भी जाने! कभी हम कुछ सिद्धांत पेश कर दे, गा भी ले बहुत लेकिन कभी-कभी रस से रहित हो जाते हैं। कोई साधु कुछ न कुछ कोई नया सुनाएगा। कोई नया अर्थ गुरुकृपा से निकालेगा। इसका अंत ही नहीं। उसी में रह जाएगा और रस न पीया तो गया!

शिव रस जानते हैं; महेश रस जानते हैं। 'सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस।' वो शोभा, वो समाज, वो उत्सव हे गरुड, मेरा बुद्धपुरुष भुशुंडि बोला, जो कहने से बनता नहीं। किसी ने वर्णन किया; 'बरनहिं सारद सेष श्रुति।' श्रुतियां ने वर्णन किया, शारदा ने वर्णन किया, शेष ने वर्णन किया लेकिन रस नहीं जाना। 'सो रस जान महेस।' रस तो मेरे महादेव ने पीया। 'रसौ वै सः।' ये रस की बात है। तो महादेव कौन-सा रस पीते हैं? सरस्वती, शेष आदि वर्णन तो कर रहे हैं। ये लोग कोशिश कर रहे हैं वर्णन करने की लेकिन रस तो जाना मेरे महादेव ने। जो परमार्थ को जानता है और रस को जानकर रस का पान करता है ये है महेशतत्त्व।

तीसरी बात है परमतत्त्व की प्रभुता को जो जान जाता है वो है महेश। 'जान महेस राम प्रभुताई।' महेश राम की प्रभुताई जानते हैं। बाकी उसकी प्रभुता कौन जाने? 'नेति, नेति, नेति।' परमात्मा की प्रभुता को, ईश्वर की ईश्वरता को, भगवान की भगवता को, ब्रह्म की ब्रह्मता को, परमेश्वर की परमेश्वरता को महेश जानता है इसलिए मेरे गोस्वामीजी उसको महेश पद प्रदान करते हैं। वो महेश है।

चौथा सूत्र; चौथा मुख। ये आदमी संसार में आबद्ध है कि संसार में होते हुए भी अब ऐसी अवस्था में पहुंच गया गुरुकृपा से, भजन से, कैसे भी, ईशकृपा से। है संसार में लेकिन संसार में होते हुए भी, सब कुछ करते हुए भी, सब व्यवहार को निभाते हुए भी जिसको कृतकृत्य का बोध हो गया है। वो जानकारी जिसको मिल जाये उसको महेश कहते हैं। देखें और पता लगा कि आदमी तो संसार में है; कर्म भी करता है लेकिन कृतकृत्य का बोध हो गया! 'कृतकृत्य कीन्ह दुहुं भाई।' जनक का अभिप्राय आया, 'मैं कृतकृत्य।' महेशतत्त्व कौन है मेरे भाई-बहन? वो एक क्षण में जान लेते हैं और किसी को बता भी देते हैं कि ये आदमी कृतकृत्य हो चुका है। जैसे कोई कृपा करके कोई बुद्धपुरुष हमें बता दे कि मिलना हो तो उसको मिल लीजिएगा, ये आदमी पहुंचा हुआ है। ये जागा हुआ है।

कागभुशुंडि के पास खगराज गरुड जाते हैं। जब गरुड को मोह हुआ कि भगवान तो परम स्वतंत्र सत्ता का नाम है, जिसके नाम से भवबंधन से आदमी मुक्त होता है। अपार मोह गरुड के मन में व्याप्त हुआ है और इधर-उधर हर जगह पूछता है, हर जगह पूछता है। तब भगवान शंकर ने कहा, हे गरुड, मैं जानता हूं एक व्यक्ति को जो कृतकृत्य हो चुका है। तू वहां जा। तेरे मोह का निवारण वहीं होगा एक बुद्धपुरुष के पास। और खगपति गरुड भुशुंडि के आश्रम में जाते हैं और गरुड का जो पहला उच्चारण है, आज मैं कृतकृत्य हो गया। मैं समझ नहीं पा रहा कि कैसा रहा होगा ये बुद्धपुरुष जिसको देखते ही आदमी कृतकृत्य भाव को पा गया!

सदा कृतारथ रूप तुम्ह कह मृदु बचन खगेस।
जेहि के अस्तुति सादर निज मुख कीन्ह महेस।

पंचमुखी शिव ने अपने एक मुख से आपके बारे में मुझे बताया कि भुशुंडि कृतार्थ रूप है। ये है महेश। कौन जागा है, वो जान ले वो महेश। किसने पाया है, वो जान ले वो महेश। कौन परम विश्राम को उपलब्ध हुआ है, कौन कबीर पूरा पा गया है, उसकी जिसके पास जानकारी है, उस तत्त्व का नाम है महेश।

पांचवां मुख; आइए, महाकाल के मंदिर में फिर एक बार। कागभुशुंडि के गुरु 'परम साधु परमारथ बिंदक।' केवल साधु नहीं, परम साधु था। एक बार महाकाल के उस मंदिर में मैं शिव नाम जप रहा था। भुशुंडि गरुड से अपनी आत्मकथा सुनाते हैं। उसी समय मेरा परम साधु, मेरा बुद्धपुरुष, मेरा गुरु, मेरा भगवान मंदिर में आया लेकिन अभिमान के कारण भुशुंडि कहते हैं, मैंने खड़े होकर मेरे गुरु को प्रणाम नहीं किया। मैं शिव नाम जपता रहा। मानो

काम सत्य है। लाख अनादर करो, काम सत्य है। काम है राम की छाया। जितना राम सत्य, उसकी छाया होने के कारण काम भी जगत का सत्य है, क्योंकि काम से जगत बना है। क्रोध है प्रेम, पोझिटिव अर्थों में। अच्छा आदमी, पवित्र व्यक्ति उसी पर क्रोध करते हैं जिस पर उसको बहुत प्रेम होता है। और लोभ है करुणा। साधु को होता है, मैं ओर हरिनाम लूं। और ये लोभ क्यों? ये लोभ हम पर करुणा करने के लिए है कि मैं ज्यादा स्वाध्याय करूं, लोगों को ज्यादा शास्त्र दूं। मैं ज्यादा भजन करूं, लोगों को ज्यादा भक्ति का पैगाम दे सकूं। मैं ज्यादा तप करूं, लोगों को ज्यादा तप के तेज से पवित्र करूं। इसके पीछे करुणा है।

अपनी साधना में लीन हूं। कोई भी आये, मैं मेरा अनुष्ठान पूरा करूं; मैं मेरा नियम पूरा करूं। तो उठकर प्रणाम नहीं किया मैंने। लेकिन मेरा ये अविनय, ये अविवेक, ये अपराध, गुरु अपराध; अब भुशुंडि बोलते हैं गरुड के साथ-

सो दयाल नहीं कहेउ कछु उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस।

मेरा गुरु तो बहुत दयालु है, उसके मन में जरा भी रोष नहीं। लेकिन तुलसी कहते हैं, अति अघ, बड़ा पाप, अतिशय पाप गुरु अपमानता, वो तो पी गया घूंट परम साधु लेकिन 'सहि नहिं सके महेस।' गुरु अपराध कितना भयंकर है वो जाननेवाले का नाम है यहां महेश, जो जानता है। ये उनका पांचवां मुख है। गुरु तो मन में नहीं ही रखेगा यारों! जो परमतत्त्व है वो सहन नहीं कर पाता। और गुरु को जब पता लगता है कि परमतत्त्व ने मेरे आश्रित के अविनय के कारण शाप दे दिया है तो गुरु फुट-फुट कर रोकर शिवलिंग को बाहों में पकड़कर गायेगा कि 'नमामीशमीशान निर्वाण रूपं।' हे बाप! हे बाप! ये मेरा है, ये मेरा है। थोड़ी चूक कर दी। तू तो दयालु है। तू तो करुणामूर्ति है।

मेरे साधक भाई-बहन, हम कथा के सत्संग से विवेक प्राप्त करते हैं। जहां तक संभव है, हम किसी बुद्धपुरुष का अपराध करते नहीं लेकिन अनजाने में भी हो गया तो एक बहुत बड़ा उपाय है, 'रुद्राष्टक।' जहां बैठो वहां ये सोचो कि मैं उज्जैन के महाकाल के गर्भगृह में बैठा हूं और ये महाकाल मेरे सामने खड़ा है, जो मुझे महाकाल के भय से मुक्त करता है।

निराकारमोंकार मूलंतुरीयं।
गिराग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं।
गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।

गुरु ने तो जरा भी मन में नहीं लिया लेकिन महेश सह न पाए और बहुत शाप बोल देते हैं। उसके निवारण के लिए फिर ये बुद्धपुरुष शिव की अष्टक में स्तुति करता है। युवान भाई-बहनों को मैं प्रार्थना करूं, आपकी रुचि जगे, आपको अच्छा लगे, आपकी रसवृद्धि हो, आपका भाव जगे तो 'रुद्राष्टक' याद करो। और मेरी तो एक ही प्रार्थना रही समाज के पास जो मुझे मेरे दादा ने कहा था कि बेटा, स्नान करते समय 'रुद्राष्टक' का पाठ करना और स्नान करो तब ऐसा सोचना कि मेरे शरीर पर मस्तक नहीं है और हाथ भी नहीं है। ये शरीर का जो भाग है कटि तक, उसमें से मस्तक का भाग निकाल दो और हाथ का भाग निकाल दो तो शरीर का शेईप शिवलिंग हो जाएगा। और शिवलिंग ही है हम। हमारा ये लिंग देह, हमारा ये पिंड देह, ये शिवलिंग है। करतत्त्व निकल जाये, हाथ निकल जाये और बुद्धि का अहंकार निकल जाये तो दुनिया में सब शिव ही है, कौन नहीं है? ऐसे मेरे सद्गुरु भगवान मुझे कहते थे कि नहाते समय कायम 'रुद्राष्टक' का पाठ करना।

मेरे भाई-बहन, 'रुद्राष्टक' का पाठ करें। मैं किसीको अपील नहीं करता। मैं किसीको आदेश नहीं देता। लेकिन मैं प्रार्थना तो जरूर करूं कि आप इतने भाव से सुन रहे हैं। सुबह में उठो और मंत्र आते हैं तो तो पगे लागूं, लेकिन न आते हो तो भी कोई चिंता नहीं। लेकिन सुबह उठो तो शांति से एक बार बेड में बैठकर 'हनुमानचालीसा' का पाठ करो। ये सिद्ध है, शुद्ध है, दोनों है। नहाते समय 'रुद्राष्टक' का पाठ करो। फिर दफ्तर में जाओ, स्कूल जाओ, खेत जाओ, अपने काम में जाओ, माताएं रसोईघर में जाए, रसोई करती हो तो! लेकिन जब सोओ तब 'भुशुंडि रामायण' का पाठ करो,' नाथ कृतारथ भयउँ मैं...' और फिर श्लोक याद रहे तो आखिर में सोते समय 'कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने। प्रणव क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः।।' देखो, जिन्दगी कैसी निखर जाएगी यार!

तो 'मानस-महेश' की कुछ बातें 'मानस' के आधार पर, गुरुकृपा से, संतों से आशीर्वाद के आपके साथ बोलते रहते हैं यार! भगवान राम का प्राकट्य हुआ। चार भाईयों-कुंवरों का प्रागट्य हुआ। समय पर वशिष्ठजी आये। चारों का नामकरण किया। पूरे जगत को आराम दे वो राम। सबको भर दे वो भरत। दुश्मन नहीं, दुश्मनी जिसके नाम से मिट जाये; शत्रु नहीं, शत्रुता; वैरी नहीं, वैर जिसके नाम से मिट जाये उसका नाम शत्रुघ्न रखा। और सकल जगत के आधार परम उदार शेषजी का नाम लक्ष्मण रखा। फिर तो चूडाकरण संस्कार; यज्ञोपवित संस्कार। अल्पकाल में प्रभु ने विद्या प्राप्त की। मेरे गोस्वामीजी कहते हैं, ये कथा तो अति संक्षेप में मैंने सुना दी। अब अगली कथा सुनो, कहकर विश्वामित्र की कथा सुनाते हैं। सिद्धाश्रम से बाबा विश्वामित्रजी पधारते हैं। असुर उसके तपस्या-अनुष्ठान आदि में विक्षेप करते हैं। तो महाराज से अनुज समेत राघव की मांग की। शुरू में तो महाराज जरा वो कर रहे हैं लेकिन वशिष्ठजी ने बहु प्रकार से समझाया। राजा के संदेह का नाश हुआ और महात्मा को यज्ञरक्षा के लिए दो पुत्र देने का निर्णय हो गया। माताओं का आशीर्वाद लेकर दोनों भाई विश्वामित्र के साथ सिद्धाश्रम की ओर चल पड़े।

राम-लक्ष्मण को लेकर जा रहे हैं बाबा विश्वामित्र। ताड़का आती है। भगवान ने एक ही बाण से ताड़का को मारी। केवल मारी नहीं, तारी भी। दूसरे दिन सुबह भगवान ने कहा, आप यज्ञ का आरंभ करो। हम दोनों भाई आपके आशीर्वाद से रक्षा में लग जाएं। मारीच आया। प्रभु ने बिना फने का बाण मारकर मारीच को सतजोजन लंका के किनारे फेंक दिया। सुबाहु आया। अग्नि के बाण से जलाकर भस्म कर दिया। यज्ञ पूरा हुआ। विश्वामित्रजी ने कहा, राघव, यज्ञ के लिए आप आये हैं तो दो यज्ञ ओर शेष हैं। एक अहिल्या का प्रतीक्षा का यज्ञ और दूसरा महाराज जनक का धनुष यज्ञ। धनुष यज्ञ, सुनते ही 'हरषि चले मुनिबर के साथा।' चल पड़े।

पदयात्रा आगे बढ़ी। आश्रम दिखा। प्रभु जिज्ञासा करते हैं, महाराज, ये पत्थरदेह कौन पड़ा है? ये किसका आश्रम है? और विश्वामित्रजी राघव को कहते हैं, महाराज, ये गौतम नारी पापवश नहीं, शापवश है। कोई कारण बना जो ये स्थिति हुई। आपके चरणरज चाह रही है। आप कृपा करें। प्रभु की चरणरज से अहिल्या का उद्धार हुआ। पतिलोक की ओर गति कर गई। भगवान की यात्रा आगे बढ़ी। गंगा के तट पर गए। प्रभु ने स्नान किया। तीर्थ के देवताओं को दान दिया। उसके बाद भगवान जनकपुर पहुंचते हैं। आम्रकुंज में अमराई में प्रभु ने निवास किया। जनक को समाचार मिला। सबको लेकर मिथिलेश आये। विश्वामित्रजी को प्रणाम किया। राघव और लखन को देखकर महाराज जनक स्तम्भित हो गए, ये कौन है! नाम-रूप को मिथ्या समझनेवाली भूमिका में पहुंचे थे महाराज जनक। वो सोच रहे हैं कि मुझमें अनुराग कैसे फूट पड़ा? विश्वामित्रजी ने परिचय कराया। 'सुंदरसदन' में मुनियों के संग राम-लक्ष्मण को ठहराया। 'मानस' में लिखा, दोपहर का समय था। मुनियों के संग रघुवंश मणि प्रभु ने भोजन किया। फिर विश्राम किया। मैं भी आपको भोजन के लिए छोडूं और आपके भाग्य में आये तो थोड़ा विश्राम करना।

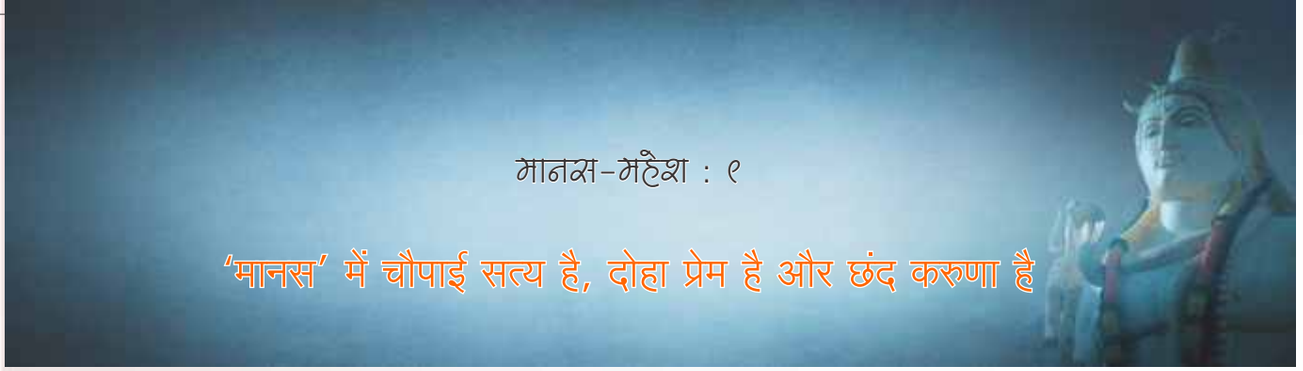

मानस-महेश : ९

'मानस' में चौपाई सत्य है, दोहा प्रेम है और छंद करुणा है

'मानस-महेश' जिसकी संवादी चर्चा करते हुए हम, महाशिवरात्रि के पवित्र दिनों में भगवान महादेव का गायन कर रहे हैं। आज विराम का दिन; कुछ उपसंहारक संवाद आपके सामने रखते हुए, विचार रखते हुए संक्षेप में कथा को विराम दिया जाएगा। मैं आगे बढ़ूं इससे पूर्व मेरे पास 'मानस' में 'महेश' शब्द कितनी बार आया, उसका एक लिस्ट मुझे भेजा गया। हर वक्त मुझे भेजा जाता है हमारे हरीशभाई; कई भाई-बहन मुझे भेज देते हैं। केवल आपके स्मरण के लिए मैं बोल दूं फिर आगे बढ़ूं। पहले भी मैंने कहा था आपको कि 'महेस' शब्द इकतीस बार आया हैं; 'महेसा' ये दो बार आया है। 'महेषु' नौ बार आया है। 'महेसु' चार बार आया है और शुद्ध 'महेश' शब्द संस्कृत का दो बार आया है। कुल मिलाकर इस गिनती के मुताबित फोर्टी एइट बार 'मानस' में ये है। भूल-चूक हो सकती है। सभी 'महेस' शब्द की व्याख्या तो सीमित समय में मुश्किल है लेकिन कम से कम उसका मैं पठन आपके सामने कर दूं।

सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान।।

ये तो हमने संवाद में भी ले लिया एक बार ये 'महेस' शब्द। बहुत से शब्द छूट गए।

गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी।।

ये पंक्ति भी आपके सामने पेश की गई।

अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू।।

ये बात भी संक्षेप में आ गई थी।

महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू।।

इसका भी स्पर्श किया गया था।

उमा महेस बिबाह बराती। ते जलचर अगनित बहुभाँती।।

उसमें भी 'महेस' शब्द है।

रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी।।

जो भूमिका की पंक्ति है, जो हम रोज गाते हैं पंक्तियां। ये सब 'महेस' शब्द गत दिन की कथा में जिसका स्पर्श हुआ।

कुछ प्रश्न। 'बापू, क्या जिसने गुरु नही किया वो ईश्वर को नहीं पा सकता? कृपया समाधान करें।' पहली ये भ्रान्ति निकलनी चाहिए मेरी दृष्टि से। ओलरेडी ईश्वर सबको प्राप्य है। आदिकाल से हमको प्राप्य है। उसको पाने के लिए गुरु की जरूरत नहीं। क्योंकि वो ओलरेडी प्राप्य है। पहचानने के लिए गुरु की जरूरत है। जो लोग कहते हैं, गुरु की जरूरत नहीं, ईश्वर को पाने के लिए जरूरत नहीं है। जरूर, क्योंकि ये तो ओलरेडी पाया हुआ है। गुरु की जरूरत पहचान भर के लिए है। कौन किसने ईश्वर नहीं पाया जब हमको गुरु के द्वारा ईश्वरानुभूति होती है तब तो हमको पता लगता है कि ये तो ओलरेडी पाया हुआ था ही। गुरु पहचान कराता है। बाकी किसने नहीं पाया है? 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।' परमात्मा सबके हृदय में निरंतर वास करता है।

'हरिना शरणनुं मूल्य वधु के शापनुं? रावणनुं तेज राममां समायुं, तो पछी शा माटे तेने फरी जन्म लेवो पड्यो?' हरि के शरण के समान तो कुछ है ही नहीं। शाप का क्या मूल्य? जिन्होंने बहुत तप किया हो, जिन्होंने बहुत शब्द साधा हो

वो शायद कुछ बोलते हैं अच्छा-बुरा तो वो कभी-कभी घटित हो जाता है शाप के रूप में। लेकिन उसका कोई मूल्य नहीं। जिसने शाप दिया न उसने बहुत घाटा सहन किया है। क्योंकि उसने तप गंवा दिया है। अपनी शब्दसाधना बेकार खर्च कर दी। शाप का कोई मूल्य नहीं है। कितने ही किसी के द्वारा हम श्रापित हों, हैं, चिंता मत करो। हरिशरण काफी है। 'मानस' में लिखा है, हरि की शरण में जीव के शाप की बाधा भी मिट जाती है। सब बाधाएं खत्म हो जाती है। हरि शरण श्रेष्ठतम है। हमारे प्रज्ञाचक्षु शरणानंदजी महाराज, उसका तो एकमात्र कीर्तन यही था-

हरि शरणम्, हरि शरणम्।
हरि शरणम्, हरि शरणम्।

तो परम की शरण में आश्रित होकर हरिशरण, इससे तो बढ़िया कुछ नहीं है। मैं क्या इसका जवाब दूं? भगवान कृष्ण ने इतनी एक्सरसाइज़ की बौद्धिक अर्जुन को समझाने की लेकिन आखिर में कृष्ण भी वही नतीजे पर आते हैं, 'मामेकं शरणं व्रज।' मेरी शरण में आ जा। बात खत्म।

शुद्ध साधना मार्ग पर आओ। किसी की भी शरण, क्या फ़र्क पड़ता हैं? एक बुद्धपुरुष की शरण पर्याप्त है। क्योंकि बुद्धपुरुष ही नररूप हरि है। नर के रूप में वो ही तो हरि है। जो हरि है वो ही तो नर हुआ है। मेरे शंकर के, महेश के तीन रूप, एक निराकार जिसको हम शिवलिंग कहते हैं। एक प्रतीक के रूप में ये शून्य है। आकार ही नहीं। शंकर का, महेश का, तीन रूप हैं। जैसे अष्टमूर्ति वैसे महेश के तीन रूप हैं। एक निराकार। हम 'रुद्राष्टक' में गाते हैं, 'निराकारमौङ्कार।' दूसरा नराकार, जो मूर्तियों में हमने स्थापित किया। भगवान शंकर की मूर्ति जहां-जहां बनी, चतुर्भुज नहीं बनी, नराकार है। नररूप है। ब्रह्म के साथ कोई दूसरा होता ही नहीं, लेकिन नर के साथ कोई दूसरा होता है। इसलिए उसके साथ पार्वती है। ये नराकार रूप है। शादी भी होती है। संसार भी चलाता है। बच्चे भी पैदा करते हैं। ये नराकार है शिव का। और तीसरा है शंकर का रूप वो है वानराकार हनुमान। निराकार, नराकार और वानराकार। ये महादेव के त्रिरूप हैं। इनमें से कोई भी पसंद करो। इस्लाम धर्म ने निराकार कुबूल कर लिया, मुबारक। क्या फ़र्क पड़ता है? बुद्धने शून्य पकड़ लिया, मुबारक। क्या फ़र्क पड़ा? जगद्गुरु शंकर ने पूर्ण पकड़ लिया, मुबारक। क्या फ़र्क पड़ता है? मेरे तुलसी ने और 'मानस' के गायकों ने उसकी एक मूर्ति गढ़ दी; एक रूप बना दिया जो लीला करते हैं, चलता है, नाचता है, फिरता है, गाता है, सुनता है।

आज इतना ही मैं कहकर आगे बढ़ जाऊं कि दुनिया में किसी को मनाना है, देवताओं में, किसी को बिनती करनी है, किसी से प्रार्थना करनी है तो मेरे तुलसी कहतै हैं, केवल महेश को ही मनाना। बाकी दूसरों की दाढ़ी में क्यों हाथ डालें? महेश को मनाओ। बिनती करो तो सदाशिव की करो, दूसरों की नहीं। दूसरे क्या देंगे यार! प्रार्थना यदि करनी है तो महेश की करो।

सब कें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु।

अवधवासी महेश को मना रहे हैं। हे महेश, हे महेश, ऐसा करो कि हम जीवित हों। महाराज दशरथ भी यही चाहते हैं, प्रजा भी यही चाहती है। एक अभिलाषा में पूरी अयोध्या कि राम राजतिलक हो जाये।

मनहीं मन मनाव अकुलानी।
कोहु प्रसन्न महेस भवानी।।

मन ही मन महेश को ही मनाने की बात कि बाबा, आप प्रसन्न हो जाओ। दूसरे की प्रसन्नता की हमें कोई चिंता नहीं, आप प्रसन्न हो जाओ।

मागहिं हृदयँ महेस मनाई।
कुसल मातु पितु परिजन भाई।।

किसको मनाया? महेश को मनाया कि मेरे माता-पिता, मेरे परिवार सब कुशल हो। जब भरत को संदेश मिला, मना रहे हैं महेश को। भरत भी शरण तो महेश के गए। इष्ट कोई भी तुम्हारा हो लेकिन तुम्हारे इष्ट को भी आप इष्ट के प्रति प्रेम रखते हो, तो कहीं तुम्हारे इष्ट को तकलीफ़ न हो इसलिए भी महेश को मनाओ। तो बिनती करनी हो तो महेश की करना। कुछ मांगना तो महेश के पास ही मांगना। ओर देवता तो स्वार्थी हैं। हमारी पूजा से भाग मांगता है! यज्ञ किया, दशांश दे दे! जैसे इन्कम टेक्सवाले आ जाते हैं! इतना पूजा पाठ किया, इतना भाग दे दे! सब अपने-अपने भाग के लिए स्वार्थी हैं। एक मेरा महेश है, मांगो तो भर देता है अथवा तो मांग ही मिटा देता है। ये महादेव करे, मांग ही मिट जाये कि कभी मांगने को जी ही न करे। मांग ही मिटे।

तो ऐसे 'मानस-महेश' की इन दिनों में हम वाङ्मय पूजा कर रहे हैं। तो बाप! भगवान शिव में तीनों सूत्र हैं। सत्य भी है, प्रेम भी है, करुणा भी है। शिव-रचित 'मानस' में भी तीनों है, सत्य भी है, प्रेम भी है, करुणा भी है। महेश-रचित 'मानस' में सत्य क्या है? चौपाई ही सत्य है। चौपाई तो कई लोगों ने लिखी है। लेकिन मेरे गोस्वामीजी का स्पर्श हो गया, चौपाई काव्यों की महारानी बन बैठी है। सर्वश्रेष्ठ सिंहासन पर आज चौपाइयों का आसन है। तो चार पद जिस में हो वो सत्य है। चार पद जिस में हो वो धर्म है। मेरी व्यासपीठ आपसे सतत बात करती है कि मेरी दृष्टि में धर्म का अर्थ है सत्य। इसलिए चौपाई है सत्य। चतुष्पाद धर्म का पर्याय सगोत्री शब्द है 'सत्य।' क्यों? 'धरमु न दूसर सत्य समाना।'

अब दूसरा, दोहा ये प्रेम है। ये सब गुरुमुखी है। किताबों में मिल भी जाये तो प्रणाम। अब कोई अपने नाम चढ़ा दे तो बाहर ओर प्रचार हो जाएगा, लोगों तक जाएगा, ये बात ओर है! दोहा क्या है? ये प्रेम है और मेरी व्यासगादी कहती है, धर्म का एक सूत्र प्रेम है। 'मानस' में प्रेम है दोहा। चतुष्पाद चौपाई सत्य है क्योंकि धर्म है, चतुष्पाद धर्म। दोहा धर्म है, इसलिए प्रेम है। 'परम धर्ममय पय दुहि भाई।' तुलसी कहते हैं, सात्त्विक श्रद्धारूपी गाय को परम धर्म का दोहन जो कर ले। दोहा मीन्स दोहना। ये परम धर्म है और परम धर्म है प्रेम। और छंदबद्ध जीवन, ये है धार्मिक जीवन। धर्म के नियमानुसार जो जीए वो धर्म की एक पद्धति है। लोग कहते हैं, धर्माचरण करो। उपनिषद कहते हैं, 'धर्मंचर।' धर्माचरण, छंदबद्ध, उसको धर्म कहते हैं। सबके साथ रहो। छंदबद्ध धर्म निभाओ लेकिन हो सके तो सबसे असंग रहो, ये धर्म है। 'छंद सोरठा सुंदर दोहा।' गोस्वामीजी छंदों को कमल का फूल कहते हैं। कमल है असंगता। कमल है धर्म का प्रतीक। तो छंद भी धर्म का प्रतीक है और वो है करुणा।

तो जिस महेश ने 'मानस' की रचना की है उसमें चौपाई सत्य है, दोहा प्रेम है और छंद करुणा है। ये तीनों इस महाशास्त्र में रखे गए हैं। ऐसे महेश का दर्शन हम इस कथा में प्रधानरूप में कर रहे थे। कथा का केवल स्मरण कर लीजिए। राम-लक्ष्मण जनकपुर में ठहरे। सांयकाल को नगर दर्शन किया। दूसरे दिन पुष्पवाटिका में जानकी और राम का मिलन हुआ। सियाजु समर्पित हो गई। गौरी के मंदिर में जाकर गौरी की स्तुति की। वरदान प्राप्त किया, तुझे सांवरा राम मिलेगा। उसके बाद के दिन भगवान शिव धनुष तोड़ते हैं। जानकी जयमाला पहनाती है। यहां परशुरामजी अवकाश प्राप्त कर लेते हैं। दशरथजी बारात लेकर आये और मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी के दिन वेद और लोकरीति से मिथिला में राम-जानकी, लक्ष्मण-ऊर्मिला, भरत-मांडवी, शत्रुघ्न-श्रुतकीर्ति चारों का ब्याह हुआ। कुछ दिन बारात रही फिर बिदा हुई। रास्ते में बारात निवास करते-करते पुनित दिन आयोध्या पहुंचती है। जबसे जानकी अवध में आई है, अयोध्या की सुख-समृद्धि बढ़ने लगी। मेहमान लोग धीर-धीरे बिदा होने लगे। एक ऋषि बाकी थे वो बिदा मांग रहे हैं विश्वामित्रजी। पूरा राज परिवार रो पड़ा।

नाथ सकल संपदा तुम्हारी।
मैं सेवकु समेत सुत नारी।।

विश्वामित्र जा रहे हैं, पूरा परिवार गद्‌गद् है। कहते हैं, ये सब सम्पदा आपकी है। मैं तो मेरी पत्नी, मेरे बच्चों, पुत्रवधूओं के साथ आपका सेवकमात्र हूं। कोई साधु बिदा ले तो क्या मांगोगे? क्या मांगना चाहिए? 'मानस' सिखाता है, अवधपति ने एक चीज मांगी विश्वामित्र से। महाराज! भजन में कभी अवकाश लेकर आपके मन में भाव उठे कि अयोध्या जाना है तो बाबा, हमें दर्शन देते रहियेगा। किसी बुद्धपुरुष से यही मांग हो सकती है कि हम आपसे आदेश तो नहीं दे सकते, हो सके तो आपको जब इच्छा हो, हमें दर्शन देना।

'अयोध्याकाण्ड' में राज्याभिषेक होते-होते राम वनवास हुआ। राम-लखन-जानकी सुमंत के रथ में बैठकर तमसा तट पहुंच गए। सुबह अनाथ अयोध्या लौट गई। भगवान शृंगबेरपुर पहुंचे। सुमंत को बिदा किया। केवट से नौका मांगी। चरण प्रक्षालन हुआ। प्रभु गंगा पार हुए। गंगा के सामने तट भगवान रुके। शिव की पूजा की। बालू के शिवलिंग बनाकर पार्थिव पूजा ठाकुरजी ने की। उसके बाद गुह साथ जुड़ गया। पदयात्रा का आरम्भ। भगवान राम भरद्वाज ऋषि के आश्रम में आये। भारद्वाजजी ने स्वागत किया। प्रभु ने मार्ग पूछा। अब यहां से हमें बताओ किस मार्ग से हम चलें? भरद्वाजजी कहते हैं, आपके लिए तो सभी मार्ग सुलभ है लेकिन आपको जाना कहां है, ये बताओ तो मार्ग निर्देश किया जाये। शिष्यों को साथ भेजे। भगवान की यात्रा आगे बढ़ी। यमुना के तट पर यात्रा पहुंची। वहां से निषाद को बिदा दी गई और तुलसी कहते हैं, एक तपस्वी आता है, रहस्यमय पात्र 'मानस' का। उसके बाद प्रभु आगे बढ़े। वाल्मीकि के आश्रम में आये। वाल्मीकि को बहुत भारी आनंद हुआ। प्रभु वाल्मीकि को पूछते हैं, हमें तो चौदह साल वन में रहना है। ऐसी जगह बताओ जहां मुझे सत्संग मिले, मुनियों को उद्वेग न हो। वाल्मीकिजी भगवान से कहते हैं, आपके बिना कोई खाली जगह पहले आप बताओ तो मैं आपको रहने की जगह व्यवस्था करूं! फिर भी आपने पूछा है। चौदह प्रकार के हृदय भावनाओं की यहां चर्चा हुई है। चौदह स्थान बताये। उसके बाद कहा, आप चित्रकूट पधारें। वहां आपको बहुत अनुकूल रहेगा। राम-लखन-जानकी चित्रकूट पहुंचे।

सुमंत खाली रथ लेकर अवध लौटा। दशरथद्वार गए। सुमंत ने प्रणाम किया। एक ही प्रश्न मुख से निकला, सुमंत, राम कहां है? सुमंत, मेरा लक्ष्मण कहां है? सुमंत, मेरी प्रिय पुत्रवधू वैदेही कहां है? कौशल्यादि सब महाराज को घेर चुके हैं। रामविरह में अवधपति की स्थिति बिगड़ती जा रही है। प्राणत्याग के समय महीपति छः बार राम बोले। महाराज सुरधाम चले गए। अयोध्या बहुत आक्रन्द करने लगी। वशिष्ठजी पधारें। धावन को भेजा कैकई देश कि भरत को ले आओ। दूत गए। तीव्र गति से भरत-शत्रुध्न अयोध्या आये। भरत अग्नि संस्कार करते हैं। शोक में पूरी आयोध्या डूबी हैं। उत्तरक्रिया हुई। फिर एक दिन सभा मिली। बहुत बड़ी चर्चाएं हुई। भरत ने कहा, मैं सत्ता का आदमी नहीं हूं, मैं सत् का आदमी हूं। मैं पद का आदमी नहीं, मैं पादुका का आदमी हूं। आप मेरा शुभ चाहते हो तो पूरी आयोध्या को लेकर हम चित्रकूट जाएं। मेरा ठाकुरजी कहेंगे, हम कबूल करेंगे।

पूरी आयोध्या चित्रकूट यात्रा करती है। राम-भरत का मिलन होता है। एक प्रेमनगर बस गया चित्रकूट में। यहां जनक महाराज को खबर मिली। जनक भी जनकपुर को लेकर चित्रकूट आये। बहुत सभाएं हुई लेकिन कोई निर्णय न हो पा रहा है। आखिर में भरत ने प्रभु के शरण में अपना समर्पण कर दिया। महाराज! 'जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई।।' आपका मन प्रसन्न हो ऐसा आप करो। निर्णय हो गया, भरत को लौटना है; चौदह साल राजसंचालन करना है। राम अवधि तक वनवासी रहे। भरत ने तीर्थयात्रा की। जाने का दिन है। भरत को ठाकुर ने कहा, भरत, कुछ कहना चाहते हो? तब कहा कि प्रभु, हम अयोध्या में चौदह वर्ष तो रहेंगे लेकिन बिना आधार हम जी नहीं सकेंगे। हमें कोई आधार दो। भगवान ने चरणपादुका दी। भरत ने शिरोधार्य किया। दोनों समाज लौट गए। सब अवध पहुंचे। जनक भी जनकपुर चले गए। भरत महाराज सिंहासन पर प्रभु की पादुका का अभिषेक करते हैं। भरतजी वशिष्ठजी के चरण पकड़ते हैं और कहते हैं, प्रभु, मेरी इच्छा है कि आप कहे तो में नंदिग्राम में जाकर आयोध्या से बाहर एक गठ्ढ़ा बनाकर रहूं। मेरा प्रभु वन में रहे तो मैं भवन में नहीं रह सकूंगा। वशिष्ठजी ने एक ही बात कही, भरत, हम जो कहते हैं वो धर्म है लेकिन आप कहते हैं वो धर्म नहीं, धर्म का सार है। मेरी ओर से आपको इज़ाज़त है लेकिन यदि कौशल्या का दिल दुःख गया तो तुम्हारी रामभक्ति सफल नहीं होगी। भरत आए कौशल्या भवन। माँ को प्रणाम किया। माँ, मैं वादा करता हूं, मैं रोज अयोध्या का संचालन करूंगा। पादुका को पूछ-पूछ कर राज्यकार्य करूंगा। रोज आपके पास आकर सेवा करूंगा। माँ, आप कहे तो मैं नंदिग्राम में रहूं। माँ सोच रही है कि भरत हमें छोड़ नंदिग्राम में रहे, ये मेरे लिए बहुत मुश्किल है। लेकिन इस संत की इच्छा के अनुकूल मैं नहीं करने दूं तो शायद ये संत चौदह साल जी नहीं पायेगा। भरत नंदिग्राम गए।

'अरण्यकांड' में भगवान राम-लखन-जानकी चित्रकूट को छोड़कर आगे बढ़े हैं। अत्रि आश्रम, शरभंग, सुतीक्ष्ण को मिलते हुए प्रभु कुम्भज के आश्रम में आये।

भगवान शिव में तीनों सूत्र हैं। सत्य भी है, प्रेम भी है, करुणा भी है। शिव-रचित 'मानस' में भी तीनों है- सत्य भी है, प्रेम भी है, करुणा भी है। सत्य क्या है? चौपाई ही सत्य है। तो चार पद जिस में हो वो सत्य है। चार पद जिस में हो वो धर्म है। मेरी दृष्टि में धर्म का अर्थ है सत्य। इसलिए चौपाई है सत्य। दोहा क्या है? ये प्रेम है। और मेरी व्यासगादी कहती है, धर्म का एक सूत्र प्रेम है। 'मानस' में प्रेम है दोहा। परम धर्म है प्रेम। और छंदबद्ध जीवन ये है धार्मिक जीवन। छंदबद्ध धर्म निभाओ लेकिन हो सके तो सबसे असंग रहो, ये धर्म है। तो छंद भी धर्म का प्रतीक है और वो है करुणा। तो जिस महेश ने 'मानस' की रचना की है उसमें चौपाई सत्य है, दोहा प्रेम है और छंद करुणा है।

उसके बाद भगवान आगे बढ़े। गीध जटायु से मैत्री हुई और प्रभु पंचवटी में निवास करने लगे। लक्ष्मणजी ने पंचवटी में प्रभु को पांच प्रश्न पूछे। भगवान ने 'रामगीता' सुनाई। शूर्पणखा आई। दंड़ित कर दी गई। शूर्पणखा ने रावण को उकसाया और रावण मारीच के साथ योजना बनाकर के आया है। भगवान ललित नरलीला करने के लिए जानकी को अग्नि निवास करवा कर के प्रतिबिंब छाया रखी है। गीधराज जटायु अपने सामर्थ्य से मुकाबला करता है। रावण जानकी को लेकर लंका में अशोकवन में यत्नपूर्वक रखने लगा। मारीच को निर्वाण देकर, मारीच का उद्धार करके प्रभु लौटे। जानकीविहिन कुटिया को देखकर नरलीला करते हुए प्रभु रोते हुए सीता की खोज करते हैं। जटायु ने सब कथा सुनाई। योगी चाहे ऐसी गति जटायु को प्रदान की। भगवान आगे बढ़े। कबंध को निर्वाण दिया और शबरी के आश्रम में आये। शबरी से नौ प्रकार की भक्ति की चर्चा। शबरी योग अग्नि में वहां गई जहां से लौटना न हो। भगवान पम्पा सरोवर आये। नारद मिले। चर्चा हुई। संत के लक्षण के बारे में पूछा। भगवान ने संत लक्षण कहकर कहा कि साधु के लक्षण तो शेष और सरस्वती भी नहीं कह सकते। नारद धन्य हुए।

'किष्किंधाकांड' में हनुमानजी और राम का मिलन हुआ। सुग्रीव से मैत्री हुई। वालीवध हुआ। सुग्रीव का राजतिलक हुआ। अंगद को युवराजपद। प्रभु प्रवर्षण पर्वत पर चातुर्मास करते हैं। सुग्रीव भगवान को दिया वचन भूल जाता है भोगों के कारण। प्रभु लक्ष्मण को भेजकर सावधान करते हैं। सुग्रीव शरण में आया। योजना बनी जानकी खोज की। तीन टुकड़ियों को उत्तर में, पूर्व में, पश्चिम में भेज दी। मूल टुकड़ी जिसमें अंगद नायक है, मार्गदर्शक जामवंत है, नल-नील आदि है और श्री हनुमानजी हैं। भगवान को प्रणाम करके सब जाने लगे। पीछे हनुमानजी ने प्रणाम किया। प्रभु ने सोचा, कार्य तो यही कर सकेगा। मुद्रिका दी। अभियान चला। जंगल में भूलावे में पड़ते हैं, तृषातुर हुए। हनमानजी स्वयंप्रभा के आश्रम में ले गए। जलपान किया। वहीं से सागर तट पर आये। सम्पाति की कथा आई। सम्पाति ने कहा कि जानकी अशोकवन में, अशोकवाटिका में बैठी है लंका में। आप लंका जाये कोई भी तो जानकी से भेंट हो सकेगी। आखिर में जामवंत ने हनुमानजी को कहा कि रामकार्य के लिए आपका अवतार हुआ है, आप चुप क्यों बैठे हैं? बाबा पर्वताकार हुए। हनुमानजी महाराज लंका में जाने के लिए तैयार और 'सुन्दरकांड' का आरंभ-

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।

श्री हनुमानजी महाराज लंका में प्रवेश करते हैं। रावण को सोये देखा। विभीषण के भवन में गए। विभीषण जागा। दो वैष्णवों का मिलन हुआ। विभीषण ने जानकी के पास जाने की युक्ति बताई। हनुमानजी गए। तरु, पल्लव में छिप गए। यहां रावण आता है। जानकी को डराता है। आखिर में जानकी बहुत दुःखी हुई तब हनुमानजी रामनाम का स्मरण करके मुद्रिका फेंकते हैं। सियाजु के हाथ में मणि मुद्री आई। हनुमानजी रामकथा गायन करने लगे। सीता के दुःख भागे।

हनुमानजी प्रकट हुए। परिचय दिया। माँ प्रसन्न हुई। आशीर्वाद दिए। तेरे पर राम बहुत कृपा करेंगे। ये सुनते ही हनुमानजी निर्भर प्रेम में डूब गए। आज मैं कृतकृत्य हो गया! फिर भूख लगी। फल खाये। तरु तोड़े। राक्षस आये, मारे। इंद्रजित बांधकर लंका में ले गया। आखिर में हनुमान को जलाने की कुचेष्टा की गई। और पूरी लंका को जलाकर बाबा समुद्र स्नान करके माँ के पास। माँ को कहा, जैसे प्रभु ने निशानी के रूप में मुद्री दी; आप भी मुझे कुछ दो। चूड़ामणि उतारकर दिया है, हनुमानजी महाराज निकल गए। प्रभु के पास आये। सब कथा सुनाई। भगवान कहते हैं, अब विलम्ब न करे। पूरी सेना लेकर प्रभु समुद्र के तट पर पहुंचे। यहां रावण की सभा में विभीषण ने हितोपदेश किया। रावण माना नहीं और विभीषण को चरणप्रहार करके त्याग दिया। विभीषण भगवान की शरण में आया। शरणागत को प्रभु ने कुबूल किया। विभीषण की राय ली कि सत जोजन सागर है, हम लंका में कैसे जाएं? बोले, तीन दिन व्रत करके आप बैठो। समुद्र आपके कुलश्रेष्ठ है। यदि कोई मार्ग बताये तो बल का प्रयोग न करें। भगवान तीन दिन बैठे। जड़ प्रकृतिवाला ये वरुणदेव, ये समुद्र, भगवान का विनय कुबूल नहीं करता है। भगवान ने कहा कि लक्ष्मण, धनुषबाण ला। जैसे प्रभु ने वो किया, समंदर में ज्वालाएं उठने लगी! ब्राह्मण का रूप लेकर, मणियों का थाल लेकर, समुद्र भगवान की शरण में आया। प्रभु को कहा, आपकी सेना में नल-नील नामक दो बंदर हैं। उसके हाथ के स्पर्श से चट्टानें तैरेगी, पहाड़ तैरेगा। आप सेतु बनाईए। प्रभु को जोड़ने का विचार अच्छा लगा।

'सुन्दरकांड' के बाद 'लंकाकांड' का आरंभ। काल का वर्णन। सेतुबंध तैयार हुआ और भगवान ने कहा कि मेरी इच्छा है, यहां भगवान महादेव की स्थापना की जाये। भगवान के हाथों से भगवान रामेश्वर की शिवस्थापना हुई। भगवान की सेना पुरुषार्थ के और कृपा के मार्ग से पहुंच गई लंका में। सुबेल पर डेरा। सांयकाल को रावण का महारस भंग हुआ। सुबह अंगद राजदूत के रूप में संधि प्रस्ताव लेकर गया। संधि विफल। युद्ध अनिवार्य। भीषण युद्ध आरंभ हुआ। एक के बाद एक वीर निवार्ण प्राप्त करने लगे। और आखिर में इकतीस बाण लेकर प्रभु ने रावण के दस मस्तक, बीस भुजाओं का छेदन किया। इकतीसवां बाण रावण की नाभि में लगा और जीवन में पहली बार और अंतिम बार प्रभु को ललकारते हुए बोला, राम कहां है? और 'राम' शब्द के साथ रावण धरती पर गिरा। उसका तेज प्रभु के बदन में समा गया। मंदोदरी आई और शोक व्यक्त करने लगी। रावण का संस्कार। विभीषण का राजतिलक। हनुमानजी जानकीजी को खबर देने गए। माँ को लाने की व्यवस्था। मूल जानकी प्रभु की शरण में। पुष्पक तैयार हुआ। सेतुबंध जानकी को विमान से दिखाया। भगवान रामेश्वर का दर्शन कराया। हनुमानजी को कहा, आप आयोध्या जाकर भरत को खबर कर दो कि प्रभु आ रहे हैं। हनुमानजी गए अवध। यहां शृंगबेरपुर में प्रभु उतरे। ये निषाद लोग दौड़े। भगवान ने कहा, तेरी उतराई बाकी है। बोल, क्या दूं? बोले, महाराज ये तो बहाना था दूसरी बार दर्शन करने का। कुछ नहीं चाहिए। फिर भी कुछ मांग। तब निषाद ने कहा, महाराज! हमने आपको नौका मे बिठाया था। हो सके तो हमें विमान में बिठाकर अयोध्या लिए चलो महाराज!

'लंकाकांड' के बाद 'उत्तरकांड' का आरंभ होता है। एक दिन बाकी। पूरी अयोध्या विरह सागर में डूबने की तैयारी में और जैसे डूबनेवाले को जहाज मिल जाये वैसे हनुमानजी आ गए। भरत को बचा लिया, महाराज! मेरा नाम हनुमान है। राम-लक्ष्मण-जानकी सकुशल लौट रहे हैं। पूरे नगर में बात फैल गई, प्रभु पधार रहे हैं। हनुमानजी लौटे। भगवान को कहा, आप जल्दी करो, विलम्ब न करो। और प्रभु का विमान सरजू तट पर उतरा है। हजारों लोग उमड़ पड़े। भगवान विमान से उतरे। जन्मभूमि को प्रणाम किया। सभी बंदर-भालू जो प्रभु के साथ थे वो मनुष्य का रूप धारण करके अवध की भूमि पर आये। सबसे पहले प्रभु वशिष्ठ के चरणों में धनुषबाण छोड़कर प्रणाम करते हैं। भरत और राम मिले तब तो कोई पहचान ही नहीं पाया कि किसको वनवास था? भगवान ने अमित रूप धारण किये।

ऐश्वर्य लीला की। सबको अपनी रुचि और भाव के अनुसार भगवान गले मिले। कोई मर्म नहीं जान पाया। और भगवान पहले कैकेई के भवन गए। कैकेई लज्जित है। प्रभु ने उसका संकोच बिदारा। सुमित्रा को मिले। कौशल्या के पास गये। माँ रो पड़ी सीता को देखकर। वशिष्ठजी ने ब्राह्मणों को पूछा, आज ही तलिक कर दें? ब्राह्मणों ने कहा, अब कल का मुद्दत न डालें। अभी ही तिलक कर दें। दिव्य सिंहासन मांगा गया। पृथ्वी को प्रणाम करके, दिशाओं को प्रणाम करके, भगवान सूर्य को प्रणाम करके, प्रजाजनों को प्रणाम करके, गुरु आदि संतों को प्रणाम करके, माताओं को प्रणाम करके राम और जानकी दिव्य सिंहासन पर आरूढ़ हुए और त्रिभुवन को रामराज्य देते हुए वशिष्ठजी ने राजतिलक किया। रामराज्य की स्थापना हुई। माताओं ने आरती उतारी। चारों वेद ब्रह्मभवन से नीचे आये। भगवान महेश कैलास से अपने मूलरूप में आयोध्या के रामदरबार में आये और भगवान की स्तुति की। महादेव कैलास गए।

भगवान ने अपने साथ आये मित्रों को निवास ठहराया। छः महीने बीत गए। अब मित्रों को प्रभु ने बिदा दी। एक हनुमानजी ही रहे पुण्यपुंज, बाकी सबकी विदाई हुई है। और यहां नरलीला है। समय मर्यादा पूरी हुई। जानकी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। दूसरी बार सगर्भा स्थिति में जानकी का वनवास, ये विवादवाली बात तुलसी लिखना ही नहीं चाहते। दो पुत्रों का जन्म हुआ। ऐसे ही तीनों भाईयों के वहां भी दो-दो पुत्र का जन्म होता है। आयोध्या के वारिसों का नाम बताकर तुलसी ने 'रामकथा' पर विराम दे दिया। उसके बाद भुशुंडि चरित्र है। आखिर में गरुड़ के सात प्रश्न हैं और उसके उत्तर हैं। भुशुंडि ने कथा पूरी की। शिव ने कथा पूरी की। याज्ञवल्क्यजी ने भरद्वाजजी के सामने कथा को विराम दिया कि नहीं, यद्यपि स्पष्ट नहीं। लेकिन तलगाजरडा को लगता है कि गंगा-यमुना-सरस्वती तीनों जब तक बहती रहेगी, प्रयागवाली कथा निरंतर बहती रहेगी। और अब कलि पावनावतार पूज्यपाद गोस्वामीजी साधु-संतों और अपने मन को श्रोता बनाकर सुनाते हैं वो तुलसी अपनी रामकथा को विराम देते हुए हम सबको सन्देश देते हैं आखिर में कि ये कलियुग है। इसमें हम जैसे संसारी लोग ओर साधन नहीं कर पाएंगे। जोग, जग्य, जप, तप हम कहां कर सकते हैं? गोस्वामीजी कहते हैं, राम को सुमिरो, राम को गाओ और जहां अवसर मिले वहां राम के चरित्र को सुनो। मेरे पूरे विश्व के श्रोताओं को मैं यही कहना चाहता हूं राम को स्मरो माने जो तुम्हारे इष्ट हो। और राम माने सत्य; सत्य को स्मरो। राम को गाओ। राम को गाने का मतलब है प्रेम। गाना प्रेम है और कथा सुनना ये तो किसी की करुणा हो तो ही सुनी जाती है। तो सुनना करुणा, गाना प्रेम, स्मरण करना सत्य है। ये तीन ही बातें तुलसी ने आखिर में की।

तो बाप! ज्ञानपीठ से महादेव ने पूरा किया। कर्म की पीठ से याज्ञवल्क्य ने मानो पूरा किया। उपासना की पीठ से बाबा भुशुंडि ने पूरा किया। शरणागति की पीठ से गोस्वामीजी ने 'रामकथा' को विराम दिया। इन चारों परम आचार्यों की कृपाछाया में बैठकर मेरी ये तलगाजरडी व्यासपीठ ग्वालियर में तेइस साल के बाद फिर मुखर हुई और आज नौ दिन के बाद मैं भी मेरा बोलना पूरा करूं इससे पूर्व कुछ बातें कहकर आपसे बिदा लूं। पहली बात, मैं इस पूरे आयोजन के लिए मेरी पूरी संतुष्टि व्यक्त करता हूं। दूसरी बात, पुलिसकर्मी, सुरक्षा, सब प्रकार की व्यवस्था और मीडिया, इस प्रेमयज्ञ में जिन लोगों ने, जिस रूप में अपनी-अपनी आहुतियां डाली है इन सभी विभागों के लिए भी मैं मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। आशीर्वाद तो हम क्यां दें लेकिन फिर भी व्यासपीठ पर बैठा हूं तो व्यासपीठ के बल से यजमान परिवार से लेकर आप सभी के लिए मैं इतना ही कहूं, बाप! खुश रहो, खुश रहो, खुश रहो। परमात्मा आप सबको कायम प्रसन्न रखे। इवन जगत में जीना है तो सम्पन्नता भी जरूरी है। इसलिए ईश्वर आपको सम्पन्न भी रखे। लेकिन भूलियेगा मत, भगवान प्रसन्न रखे, भगवान सम्पन्न रखे तो हमारा एक दायित्व है, हम किसी परम शरण में प्रपन्न हो जाये, आश्रित हो जाये, शरणागत हो जाये। ऐसी मेरी आपके प्रति शुभकामना है। ये नौ दिन की रामकथा प्रेमयज्ञ का परिणाम समर्पित करें। शिवरात्रि के परम पावन पर्व के अनुसंधान में ये कथा शुरू हुई और ऐसे ही गुरुकृपा से मेरे मने में ये स्फूर्ति आई कि मैं 'मानस-महेश' पर बोलूं और मैंने आपके सामने महेश को केन्द्र में रखते हुए, भगवान सदाशिव को केन्द्र में रखते हुए कुछ संवादी सूर में बातचीत की। मुझे लगता है, हम सब मिलकर के नौ दिवसीय इस 'रामकथा' 'मानस-महेश' त्रिभुवनेश्वर को समर्पित कर दें, महादेव के चरणों में वो समर्पित कर दें कि हे त्रिभुवनेश्वर, ये कथा तुम्हारे चरणों में हम समर्पित करते हैं।

मानस-मुशायरा

लाज़िम नहीं कि हर कोई हो कामयाब हो,
जीना भी सीख लीजिए नाकामियों के साथ।
या तो कुबूल कर मेरी कमज़ोरियों के साथ।
या छोड़ दे मुझे मेरी तन्हाइयों के साथ।

–दीक्षित दनकौरी

बस एक लम्हें में दुनिया बदलनेवाली थी।
अगर वो मेरा जरा ओर इंतज़ार कर लेता।
जमाना मुझ पर अगर एतबार कर लेता।
मैं आंसूओं का समंदर भी पार कर लेता।

–अतुल अजनबी

उसे छूने का अफ़सोस अब करूं तो क्या।
हाथ खुद भी कभी में बढ़ा न पाया था।

●

फिर उसके बाद तो हर रोशनी हुई मेरी,
एक फ़कीर के दर पे दीया जलाया था।

–राज कौशिक

मैं जिसे ओढ़ता, बिछाता हूं।
वो गज़ल आपको सुनाता हूं।

–दुष्यंतकुमार

तुम अगर भूल भी जाओ तो ये हक़ है तुझको,
मेरी बात ओर है मैंने तो मुहब्बत की है।

–साहिल लुधियानवी

क्वचिदन्यतोऽपि

दाढ़ सब से बड़ा दान है और फ़रियाद सब से बड़ा नुकसान है

छेलभाई व्यास अमृत महोत्सव के अवसर पर मोरारिबापू का प्रेरक उद्‌बोधन

सर्व प्रथम इस सात्त्विक प्रसंग में केन्द्रस्थ हम सब के प्रिय लबालब छेलभाई, मैं सोच रहा था कि उनके लिए कैसा विशेषण प्रयोजित करूं? मुझे लगा कि लबालब छेलभाई और श्रोता आदरणीया बहन; आप दोनों का उदाहरणीय दाम्पत्य और उस दाम्पत्य को इस संध्याकाल में मेरे प्रणाम। छेलभाई के बड़े भाई पूजनीय बुज़ुर्ग एवं परिवार; आदरणीय गढवीसाहब, मैं बरसों से जिनको सुनता आ रहा हूं उनमें काफ़ी वक्ताएं ऐसे हैं कि उनको जब भी सुनते हैं, नए लगते हैं और रससभर भी लगते हैं, ऐसे गढवीसाहब; रूपालासाहब, जो स्वयं उसका परिचय हैं। ईश्वरिया से निकलकर गांधीनगर और गांधीनगर से दिल्ही जाने के बाद भी वह ईश्वरियापन वैसे ही बना रहे, यह कोई परमतत्त्व की मेहरबानी है, कृपा है। उनको जैसे हैं वैसे ही देखे हैं उसका मुझे अत्यंत आनंद है। गोपालभाई, कैसे यज्ञों का आरंभ कर यह मनुष्य बैठा हुआ हैं! इसका मेरे मन में बहुत गौरव व आनंद है। हमारे परम स्नेही आदरणीय मनोहरभाई, शहर या गांव में रहे, कोई भी फ़र्क नहीं पड़ता ऐसी सृजनशीलता जिनमें समाविष्ट है ऐसे मनोहरभाई; और विधिशील संचालन करनेवाला हमारा प्रणव; व्यास परिवार, भट्टबापा परिवार और आप सब को देखकर बड़ी खुशी हो रही है। सब को मेरा प्रणाम।

छेलभाई की इतनी प्रतिभाओं के दर्शन कभी नहीं हुए थे। एक श्रावक प्रतिभा से मैं प्रभावित था। प्रभावित अर्थात् मुझे पसंद था कि यह आदमी गज़ब का श्रावक है! श्रवण भी एक विज्ञान है साहब! और यह विज्ञान नहीं होता तो छेलभाई व्यास, उस व्यास ने 'श्रवणं' को प्रथम स्थान दिया न होता। 'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।' अर्थात् श्रवण भी एक विज्ञान हैं, एक विद्या है, ऐसा मैं मानता हूं। यह परमतत्त्व तक पहुंचने का पहला चरण है, ऐसा हमारे आचार्यों, शास्त्रकारों ने दर्शाया है।

और गोस्वामीजी तक उनका अनभूत परिचय करवाया है। किंतु छेलभाई इतने बड़े वाचक भी है उसका परिचय मुझे क्रमशः होता रहा। अब पता चला कि छेलभाई एक सर्जक भी हैं और लेखक भी हैं। वे भी कुछ नया दे सकते हैं। और छेलभाई इस भट्ट परिवार के साथ और व्यास हैं। अतः वे कथक भी हैं। उन्होंने 'अस्मितापर्व' में पोना-एक घंटा जो वक्तव्य दिया! छेलभाई आप के इन पचहत्तर वर्ष के अवसर हर्ष व्यक्त करने के लिए हम आए हैं तब अहेतुक हेत करने आए हैं। अहेतुक हेत नहीं होता तो नारद गलत साबित हो सकते हैं। 'कामनारहितं गुणरहितं प्रतिक्षण वर्धमानं सूक्ष्मतरं अविच्छिनं अनुभवरूपम्।' यह छः-छः सूत्र देवर्षि नारद ने भक्तिसूत्र में प्रेम के लिखे हैं। यह अहेतु हेत उसका गुजराती अनूदित रूप है। यह नारद यथास्थिति रमेश में उतरे हैं। वे सब चीज़ें प्रेम को लागू होती हैं। और अहेतुक न हो उसे हेत कैसे कह सकते हैं? आप मुझे समझ सके ऐसा कहना यह भी आप का अपमान किया कह सकते हैं किंतु इस अंतिम कथा से मैंने शुरू किया। अब तक मैं यह कहता था कि मैं कथा कहता हूं क्योंकि 'स्वान्तः सुखाय', यह मेरे तुलसी से लिए हुए शब्द थे। और मैं भी मेरे अंतःकरण के सुख हेतु कथा कर 'स्वान्तः सुखाय' कहता था। फिर कहता था कि 'मोरें मन प्रबोध जेहिं होई।' मेरे मन का बोध हो इसीलिए मैं कहता हूं। और तीसरी बात कहता था कि-

निज गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसी कह्यो।

मेरी बानी पवित्र करने। किंतु इन तीनों को निकाल दिया। इस अंतिम कथा से मैंने कहा कि इन तीनों के लिए मैं कथा नहीं करता हूं। मुझे मेरे राघव के चरण में हेत है इसीलिए करता हूं। 'हेतु रहित अनुराग राम-पद।' इस तरह इस मनुष्य ने अहेतुक हेत किया है। और जो अहेतुक हेत करता है इसे सभी अहेतुक हेत करने के लिए ही आएंगे। और इस तरह हम सब इकठ्ठे हुए हैं तब कितनी चतुर्मुखी प्रतिभा इस आदमी में दिखाई दी! वह श्रावक तो है ही। पता नहीं, कितनी पीढ़ियों से सुन रहा होगा यह आदमी! यह ऐसे ही नहीं आता। सभा में आप दस मिनट एकाग्रता से किसी को सुनते हैं तो उसका संशोधन करना चाहिए कि यह व्यक्ति कान से सुनता है। कान-कर्ण है, किंतु कई लोग कर्ण से सुनते हैं, अंतःकरण से कितने सुनते हैं? जब अंतःकरण से श्रवण शुरू होता हो यह कोई तप दिखाता है। इसीलिए कितनी प्रतिभाएं इसमें इकठ्ठी हुई हैं! और ऐसी प्रतिभा, जब उसकी वंदना होती है तब तुलसी का एक दोहा याद आता है-

रामहि सुमिरत रन भिरत देत परत गुरु पायँ।
तुलसी जिन्हहि न पुलक तनु ते जग जीवत जायँ।।

'दोहावली रामायण' का यह बहुत ही प्रसिद्ध दोहा है कि यह इतने समय पर जिसे हर्ष न हो, उसका जीवन निरर्थक साहब! उसके जीवन का कोई अर्थ नहीं है। अहेतुक हर्ष होना चाहिए। ये सब अहेतुक हर्ष लेकर आए हैं। इसका कारण 'रामहि सुमिरत', राम अर्थात् मेरी दृष्टि से मेरा राम जो हैं वह मुझे आप पर अरोपित नहीं करना हैं। वह मेरा राम है। किंतु राम अर्थात् शब्दब्रह्म, राम अर्थात् नामब्रह्म, राम अर्थात् रूपब्रह्म, राम अर्थात् लीलाब्रह्म, राम अर्थात् धामब्रह्म, किसी भी तरह लें। अतः राम एक शब्दब्रह्म भी है। और शब्द को जिसने कान से सुना हो; इस शब्द को जिसने जिह्वा से चबा-चबाकर पचाकर शबरी के बोर की तरह मीठा कर समाज के कान तक पहुंचाया हो। अर्थात् ऐसे शब्दब्रह्म का स्मरण करनेवाले, उनको मिले तब हर्ष न हो तो जीवन निरर्थक। 'रामहि सुमिरत रन भिरत', तुलसी कहते हैं, मरूस्थल में किसी के साथ संघर्ष में उतरते हैं धर्म के लिए, मर्यादा हेतु, सभ्यता हेतु। यद्यपि मैं 'युद्ध' शब्द का विरोधी व्यक्ति रहा हूं किंतु अब यहां इसकी लंबी मीमांसा करने की जरूरत नहीं हैं। हां, कोई भी युद्ध आख़िर बुद्ध की ओर ले जाता है। किंतु अब उस युद्ध की बात छोड़ देते हैं।

यह हमें याद रखना चाहिए। मैं जो समझा हूं कि राम में 'रणरंग' है किंतु 'युद्धरंग' नहीं है। रणरंग होना चाहिए। रण अर्थात् आमने-सामने दोनों पक्ष लडते हो उसे ही रण नहीं कहा जा सकता साहब! यह भी एक रण है। समरांगण नहीं है। यह स्मरणांगण हैं। यहां स्मरण का आंगन। ये श्रवणांगण है। यहां श्रवण का आंगन है। उसमें राम स्वयं बोलते हैं तो सुननेवालों को आनंद हो और वाल्मीकि बोलते हो तो राम को भी आनंद हो। ऐसे यह एक किसी आंगन में जिसको रंग न चढ़ता हो, जिसे आनंद नहीं होता, उसका जीवन निरर्थक! 'रामहि सुमिरत रन भिरत', और 'देत'; किसीको कुछ देना है, उस समय जिसे पुलकित

भाव जागृत न हो, 'भूमि भार भूता।' वह पृथ्वी का भार है। 'देत' अर्थात् शुभ भाव, शुभ चिंतन, शुभ मनन। इस तरह छेलभाई किसी भी वक्ता को सुनते हैं और दाद देते हैं। यह दाद सब से बड़ा दान हैं। सब से बड़ा फ़ायदा है। और फ़रियाद सब से बड़ा नुकसान है। मैंने इतने साल में देखा है कि लोगों के पास फ़रियाद और दूसरों की गलतियां निकालने के सिवा लगभग कुछ शेष नहीं है! अब इसकी नोटबंदी कैसे हो सकती है? यदि यह बंद हो जाए तो रामराज्य दबा हुआ ही है साहब! छिपा हुआ है प्रेमराज्य।

रूपालासाहब 'रामायण' के उपासक हैं। उन्होंने समग्र 'रामायण' का सार निकालकर एक छोटी 'रामायण' पुस्तिका तैयार की है। मुझे भी लाभ मिला था। हमारे तत्कालीन मुख्यमंत्री नरेन्द्रभाई मोदीसाहब भी उस दिन थे। यह व्यक्ति 'रामायण' का उपासक है। मुझे कोई यह बताएं कि अयोध्या में कोई युद्ध हुआ? एक 'रामायण' के गायक के रूप में मैं जवाबदारीपूर्वक बोलता हूं। कभी भी युद्ध हुआ? हां, हनुमानजी संजीवनी लेकर निकले और भरत को संदेह हुआ कि कोई असुर लगता है और वनगमन करनेवाले मेरे तीन पूजनीय तत्त्वों को नुकसान न पहुंचाए इसीलिए फली रहित बाण का अनुसंधान कर उन्होंने हनुमानजी को नीचे गिराया। किंतु साहब! यह अयोध्या में नहीं हुआ था। अयोध्या के बाहर नंदीग्राम में हुआ था। अयोध्या में युद्ध हुआ ही नहीं साहब! राम ने ताड़का को 'एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा।' एक बाण से ताड़का के प्राण हर लिए वह भी अयोध्या में नहीं। अयोध्या से बाहर जाने के बाद हुआ। डोंगरे बापा कहते थे; उस ब्रह्मलीन का मैं पुन्य स्मरण करूं संध्या समय। वे कहते थे कि जहां युद्ध को स्थान नहीं है वह अयोध्या है। अयोध्या कोई भूमि नहीं है किंतु संघर्षमुक्त भूमिका का नाम अयोध्या है।

कुछेक समय पूर्व मैं भावनगर में भी एक कार्यक्रम में कहता था। 'वाल्मीकि रामायण' मेरे मानस में घूम रहा है। इस तरह कथा कहनी हो तब सभी संदर्भ लेने पसंद आए। भगवान राम ने रावण को क्षत-विक्षत कर दिया। रथ के एक-एक अंग को तोड़ दिया साहब! और रावण लहूलुहान हो गया। यह कुछ ही दिन युद्ध हुआ। अभी एक घंटा-दो घंटा युद्ध शेष था। युद्ध के उस समय नियम थे कि सूर्यास्त पहले बंद हो जाता था और उसके बाद किसी के पर हाथ नहीं उठाया जाता था। हाल-हवाल जानते थे। भगवान राम ने रावण को कहा कि आज आप बहु श्रमित हो, आपके शरीर से लहू निकल रहा है दशानन और इस समय मैं आप को अधिक प्रहार करूं तो वह मुझे, रघुकुल को शोभास्पद नहीं है। हम बैरी हैं किंतु मैं बिनती करता हूं कि इस समय युद्ध रोकीए। आप शिबिर में जाइए अथवा अपने भवन में पधारिए। वैद्य को बुलाइए, औषधि लीजिए, विश्राम करें। कुछ पीजिए जिससे आपको नींद आ जाए और कल नियत समय फिर रणभूमि में आप आएंगे तब रघुनंदन राम आपका स्वागत करने के लिए तैयार होंगे। और उस समय रावण बोले, रावण तो अभी दो-तीन दिन के बाद मरेगा राघव, किंतु रावणत्व आज मर गया है! रावण बल से मरेगा साहब! रावणत्व शील से मरेगा। रावणत्व का नाश करना हो तो शीलवान मनुष्य खड़े होने चाहिए राष्ट्र में। केवल बल से रावण मरेगा। अभी भी हम रावण को मारते ही रहते हैं! और कितने मस्तिष्कवाला फिर प्रगट होता है, व्यक्ति के जीवन में, राष्ट्र में और विश्व में! इस परंपरा की मैं आलोचना नहीं करता हूं। कई बार 'रामायण' के गायक के रूप में मुझे निमंत्रण मिलता है कि बापू, दशहरा के दिन रावण को जो मारा जाता है उस समय आप आएं। मैंने कहा, मुझे माफ़ करें। किसी को जलाना, किसीको मारना मेरी डिक्शनरी में नहीं है साहब! यह मुझे अनुकूल नहीं होगा। अन्यथा स्वाभाविक रूप से मुझे बुलाएं। वे तो स्वाभाविक रूप से किसी को भी बुलाते हैं तो मुझे क्यों न बुलाए! इतना तो समाज में विवेक है ही। सामनेवाले को तीर मारने के बजाय अपने आप को मारने हो ऐसे व्यक्ति के हाथों से मराये साहब! अपवाद दूसरी चीज़ है। शील रावणत्व का नाश करेगा, ऐसा जब बोला। आप विचार करें, उस राम ने कैसे शील का दान किया? कैसे वचन कहे? मेरा तुलसी कहता है, 'देत'; अन्य को कुछ देने का हो तब जिसके शरीर पर पुलकावलि प्रस्फुरित न हो उसका जीवन बरबाद हो गया!

रामहि सुमिरत रन भिरत देत परत गुरु पायँ।

रूपालासाहब व्याससाहब को अपने साहब मान कर पैर पड़े। गुणवंत शाह कहते हैं, सभी ऋषि शिक्षक हैं किंतु

सभी शिक्षक ऋषि नहीं होते। ऐसा गुणवंत शाह का विधान मुझे प्रिय है। किंतु मेरा शिक्षक मेरे लिए पूजनीय है। यह भाव अभी भी हमारे यहां यथावत रहा है। 'देत परत गुरु पायँ।' अपने शिक्षक को वंदन करते हुए मैंने देखा है साहब! जब तक सत्ता न मिले तब तक आपके पैर को छू कर पैर पड़ते हैं और उसकी क्लिपिंग फिरती रहती होती है! किंतु सत्ता मिलने के बाद 'अरे, कैसे हैं? क्या है?' यह भी मैंने देखा है! कहां गया शील? यह देश शील मांगता है। हमारे देश का व्यास, हमारे देश के वाल्मीकि शील की भिक्षा मांग रहे हैं। और अत: एव इस व्यक्ति को मैं कहूंगा, यह आदमी श्रवणशील है। यह आदमी वातशील है। यह आदमी वाचनशील है। उस दिन 'अस्मितापर्व' में वे कैसा बोले साहब! मैंने उनको इससे पहले इतना बोलते हुए कभी नहीं सुना। वैसे हम बैठे हो और बातचीत करें यह एक अलग बात है। किंतु बाप! जीओ मेरे बाप! यह भेंसला की कृपा है। भेंसलो अर्थात् हमारे नजदीक का देव है, भेंसलो हनुमान।

तलगाजरडा से गांव के हमारे किसान भेंसला हनुमान को आटा-प्रसाद करने जाते तब हमें साधु के लड़कों को वे कहते थे, 'बावाओं, चलिए लड्डु खाने।' और हम चड्डी पहने हुए सभी बावा चले चलते! क्योंकि हम न खाएं तो उनका खाये कौन? क्योंकि जिस तरह से यह 'मलिंदो' (प्रसाद) तैयार किया हुआ हो वह खानेयोग्य नहीं होता! यह तो बावा ही पचा सकते हैं! दूसरा पचा नहीं सकता। और हकीकत में धूल उड़ती चली जाए और बैलगाड़ी में बैठते बाप! इस तरह भेंसला जाते थे। उसके बरामदे पर बैठे हुए होते थे उसके बाद आटा (प्रसाद) होता था, दाल होती थी। जब देर होती थी तब गांव के लोग रात की ठंडी रोटी लेकर आते थे। उसे पता था बावाओं को ठंडी रोटी अनुकूल रहती थी। वे कुछेक ठंडी रोटियों ठूंगो करने देते थे। थोड़ी रोटियां खायें तब हमें ऐसा लगता था कि 'नाना वैश्वानर' को कुछ अच्छा लग रहा है भीतर।

भेंसला के हमने बहुत दर्शन किए थे। और छेलभाई भी भेंसला की कृपा है। और हनुमानजी का वक्ता कौन? यहां हमारे संस्कृत के वयोवृद्ध विद्वान बैठे हैं वसंतबापा। भगवान ऐसा कहते हैं, लक्ष्मण, बीच में बोलना मत। 'किष्किन्धाकांड' में जब हनुमान और राम का मिलन होता है और हनुमानजी जिस तरह संस्कृत में उसे प्रश्न पूछते हैं तब भगवान बहुत ही चुप रहे। एक भी उत्तर नहीं दिया तब लक्ष्मण को ऐसा लगा कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम आज शील चुक रहे हैं। एक ब्रह्मचारी इतना पूछ रहा है और राम उत्तर न दे! मुझे आश्चर्य होता है! राम को संकेत किया कि प्रभु, यह ब्रह्मचारी इतना पूछ रहा है

और आप बोलते नहीं? तो कहा, मेरी ज़िंदगी में ऐसी सुंदर बानी बोलनेवाला मैंने पहली बार देखा है। मुझे यह लाभ गंवाना नहीं है। यह श्रवणशीलता है। समग्र शील एक जगह पर केन्द्रित हुआ है, ऐसे कई लोग हमें समाज में मिलते रहे हैं किंतु जिनको नज़दीक से देखा हैं, हमने जिनके पास बैठकर अनुभव किया हैं ऐसी एक व्यक्ति यह है। अनेक प्रकार से अपना स्थान बनाये रखते हुए इस अमरेली नगर में यह एक ऐसी व्यक्ति हैं जिनकी वंदना करने हम एकत्रित हुए हैं। पचहत्तर वर्ष उन्होंने पूरे किये। मैं जब से देख रहा हूं तब से ऐसे ही रहे हैं!

यह लड़का अमरिका से आ रहा है। नासा में नौकरी कर रहा है। वैज्ञानिक है लड़का। उनको मैं पूछता था कि दो दिन पहले मैंने पढ़ा है कि ऐसा प्लेन आ रहा है कि दिल्ही से उड़कर तीस मिनट में टोकियो! मैंने कहा कि यह तो कथा करने के लिए जाना बहुत सरल होगा! हां, जादरा ही दूर होगा तलगाजरडा से निकलने के बाद और यह तीस मिनट! किंतु ऐसा यदि होगा तो छेलभाई! आपको अभी बहुत जीना है और मुझे तो जीना ही है। मरे मेरी बला! कई लोग जैसे-जैसे उम्र होती हैं वैसे पागल ही हो गए हैं! 'मुझे अब जीना नहीं है! हर तरह के अवसर मिल चुके हैं।' अरे, मूल अवसर बाकी रह गया है! तुम पानी-पानी हुए हो, आनंद कहा किया ही साहब! तूने तो किसी की प्रशंसा की! किसी की खुशामत की! किसी के नेटवर्क बनाएं! किसीको शीशे में रखकर बुच लगा दिया! तूने कहां आनंद लिया है? तो 'आज का आनंद लीजिए, कल किसने देखी है।' और फिर गाते रहते हैं, 'कोई कोईनुं नथी रे...' अरे, तू किसी का नहीं रहा! पूरी दुनिया यूनाइटेड है भाई। आनंद उठाने का टाइम कब छूट जाए! अभी तो यह व्यक्ति आनंद ले रहा है और अभी भी उसके मन में खुमारी उठती रही है कि मेरी इतने साल की श्रवणशीलता है, अभी भी मैं उसका आलेखन करूं। और अभी भी उस निमित्त से फिर इकठ्ठा हो जाए और ऐसा ही कार्य करते रहने के लिए परमात्मा ऐसी तंदुरस्ती, ऐसा ही मुस्कुराहटपूर्ण स्मित-आरोग्य हनुमानजी आप को प्रदान करें। और बहन उनको सुनती ही रहे। इसमें ऐसा हैं, लोग अभिप्राय देते रहते हैं! बहन को तो पूछिए! यहां तो सही ही है, यहां तो गलत है ही नहीं। किंतु यह एक शिष्टाचार है बाप! किंतु बहन के लिए सवाल ही नहीं। मुखाकृति हमें शील का परिचय दे देती है। छेलभाई, आपके समग्र परिवार का आज दर्शन किया है बाप! ये लड़के, लड़कियां और बुज़ुर्ग।

मैं ओर क्या कहूं? हमारे कृष्णशंकर दादा कितना लंबा आशीर्वाद देते थे! और ब्राह्मण को एक बावा द्वारा आशीर्वाद नहीं दिया जा सकता! मैं तो साधु! ब्राह्मण को आशीर्वाद नहीं दे सकता! यह तो अभी कुछ ईश्वर की कृपा है कि बावा को थोड़ा-बहुत आदर मिल रहा है। अन्यथा बावा को बुलाता था कौन? हमारी गांव में चोरासी हो तब भी ब्राह्मण उनके लड्डु में जितना घी डालते थे उनसे हमारे लड्डु में कम डालते थे साहब! ऐसा करनेवाले तो चले गए! अब उनका श्राद्ध मैं खाता हूं! मुझे किसीने कहा कि ब्राह्मण भेद नहीं करता। भेद करता है उसे ब्राह्मण नहीं कह सकते। और यह आपके साधुओं का वह क्यों अलग रखे और उसमें क्यों घी कम डालें? मैं इस तरह वर्ण नहीं कहता हूं किंतु एक ब्राह्मणत्व की जो मजा है साहब! हां, छेलभाई चाहे वर्ण से भी ब्राह्मण हो, किंतु दूसरे रूप में उनमें ब्राह्मणत्व खिला है। उस ब्राह्मणत्व के पैर पड़ता हूं। तब सभी मुझे पूछते थे कि ऐसा क्यों होता है? वो जो खिलानेवाले गांव के लोग जिन्होंने चोरासी की है वे तो हमारा भी खयाल रखते थे। ये हमको बताते कि लड्डु में घी कम है। मुझे कहते, ऐसा क्यों? मैंने कहा, मुझे पता है, बावाओं के पेट ऐसे लड्डु पचा नहीं सकते! हमारे आरोग्य के लिए ब्राह्मणदेव हम पर उपकार करते हैं! हमें परम आशीर्वाद देते हैं! बाप! आनंद व्यक्त करता हूं। छेलभाई के उमंग की ओर अपना उमंग व्यक्त करता हूं। और छेलभाई, मुझे किसी दिन किसी का बुरा नहीं लगता है बाप! इस संध्याकाल में ब्राह्मणसभा, विद्वत् सभा शब्द के उपासकों की; और सचमुच भरोसा रखें कि आपके मोरारिबापू को कभी बुरा नहीं लगता। और मुझे किसी दिन ऐसा लगा तो यह समझना कि यह बावा कुछ अलग है! मुझे बुरा नहीं लगता किंतु छेलभाई, इस प्रसंग पर मुझे याद न किया होता तो शायद...शायद...!

(श्री छेलभाई व्यास अमृत महोत्सव के अवसर पर अमरेली (गुजरात) में प्रस्तुत वक्तव्य: दिनांक १-१०-२०१७)

सांध्य-प्रस्तुति

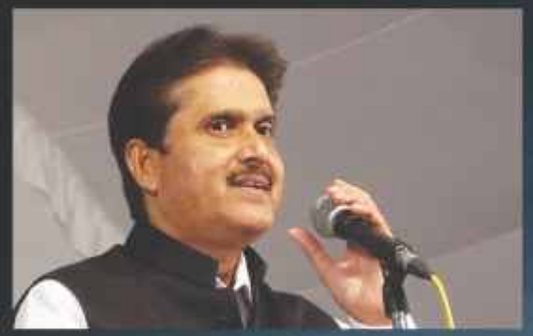
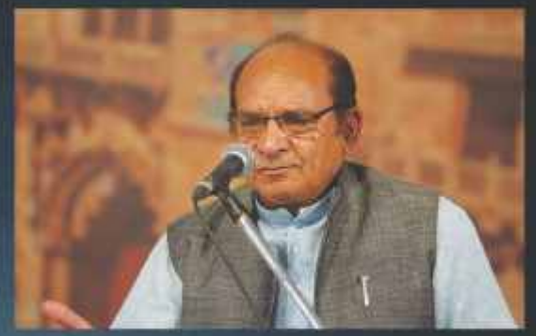

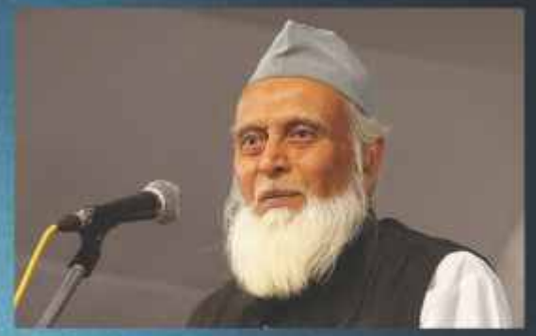

॥ जय सीयाराम ॥